सूची

आवेदन

सेवक · जय हो राजरानी, राज राजेश्वरी ! सेवक पुरस्कार की आशा से द्वार पर आया है ।

रानी सेवक ! राजसभा विसर्जित हो चुकी, मेरे अन्य सेवक यथायोग्य कार्य-भार के साथ सगर्व जय-शख वजाते विदा हो चुके । तुम निशान्त मे चन्द्रोदय के समान अव व्यर्थ ही आये । कहो क्या आवेदन है ?

सेवक सव समाप्त होने पर ही मुझ सर्वाधम दास का योग्य अवसर है महारानी ! जब सभी जन परितृप्त और पूर्ण आनन्द के साथ घर लौट गए उसी समय मै इस निर्जन सभा मे एकाकी आसीन रानी के चरणों मे आकर उस उच्छिष्ट भिक्षा को माँगने आया हूँ जो अन्तिम सेवक के ही भाग मे आ सकती है महारानी !

रानी अवोध भिक्षुक ! इस असमय तुझे क्या मिलेगा ?

सेवक · मिलेगा रानी, अवश्य मिलेगा । तुम्हारे पास नाना कार्य, नाना अधिकारसम्पन्न सेवक है, किन्तु एक कार्य ऐसा है जो किसी राज्याधिकारी को रुचिकर नही । मुझे वही दे दो, मै तुम्हारे उपवन का मालाकार वनूँगा ।

रानी · मालाकार ?

सेवक · हाँ, महारानी, क्षुद्र मालाकार । मै अन्य सव कार्यो से अवकाश पा लूँगा । अपना मुकुट तुम्हारे चरणो पर रख दूँगा । अपना धनुप-वाण धूल मे फेक दूँगा । जितने ऊँचे आसन है सव मुझसे छीन लो रानी, मुझे देश-देशान्तरो मे

दिग्विजय के लिए मत भेजो, सम्मानपूर्ण राजकीय कार्यों के लिए दूर देशो की राजसभाओ का दूत मत बनाओ। तुम्हारे अधिकार मे असीम विस्तृत नगर है। नगरो के मदिर-शिखर और हर्म्यचूड दिगन्त भेदन कर रहे है। वहाँ नाना सेवक है, अनगिन सैनिक और असख्य प्रहरी उनकी रक्षा कर रहे है। मुझे वहाँ न भेजो। मै तुम्हारी सेवा मे रहूँगा। जहाँ निर्जन गिरिशिखर पर तुम्हारा तुषार धवल, चन्द्र-कान्त मणिमय अनिन्द्य निर्मल राजप्रासाद है उसके दक्षिण ओर विजन मे मजरित इन्दु वल्लरी वितानो मे निभृत कुज है, वही एकान्त मे मै अपना समय काटूँगा। हे एकाकिनी महारानी! मैं तुम्हारे ही उपवन का मालाकार बनूँगा।

रानी हे कर्मभीरु प्रमादप्रिय सेवक! मालाकार वनकर क्या करोगे तुम ?

सेवक तुम्हारे राजकाज के कामो से अतिरिक्त समय की सेवा के सब कार्य महारानी! वसन्त और शरत् काल की अरुणोदय वेला मे अरण्य पथ की जो वन-वीथिका तुम्हारे अलस तप्त चरणो से मुरझाकर विसर्जित हो जायगी मै उसे पुन. नवीन कर दूँगा। प्रत्यह तुम्हारे चरणो के पुष्पाक्षरो से स्तुति-गीत लिखूँगा। तुम्हारे चरण-स्पर्श से पुलकित तृणपुज उषाकाल में तुम्हारा स्वागत करेंगे। सन्ध्या समय जिस मजु-मालिका को तुम वेणी मे गूँथती हो, उसे अपने हाथो स्वर्ण-पात्र मे सजाकर तुम्हारे सम्मुख नि शब्द, नतमुख भेट करूँगा। उस कुमुद-भरे सरसी-कूल पर बैठकर, जहाँ सप्तपर्ण के तरु-तले मालती की शाखाएँ झूलती है और जहाँ कौतूहल-भरा चाँद पत्तो के झुरमुट मे से तुम्हारे ललाट, वक्ष और वसनो को सहस्र
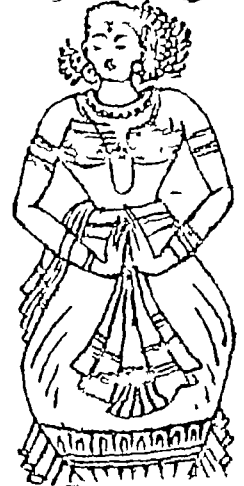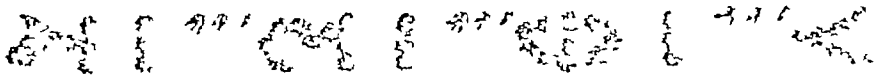
चुम्बनो द्वारा आलिगन करता है और जहाँ वासना-विभोर वन-सुरभि मृदु मद समीर की तरह उठती रहती है, मैं तुम्हारे लिए वेणी बनाऊँगा और तुम्हारे शय्या शिरोदेश पर दीपक मे अनिमेष गन्ध तेल भरता रहूँगा और शेफाली के फूलो से तुम्हारे वासन्ती वस्त्र रँगूँगा। इसके अतिरिक्त तुम्हारी चौकी पर नवीन भावना नवीन रूपो मे प्रत्यह कुकुम, चन्दन का आलिम्पन करूँगा। मै तुम्हारे निकुजो का क्षुद्र अनुचर, क्षुद्र मालाकार बनूँगा रानी !

रानी . सेवक, इन सेवाओं के मूल्य मे तुम्हे कौनसे पुरस्कार की इच्छा है ?

सेवक : प्रत्यह प्रभात के फूलो का कंकन बनाकर जब मै आऊँ, तब अनखिली कलिका-सी तुम्हारी कोमलक लाई को हाथो मे लेकर कंकन पहना सकूँ, यही पुरस्कार है रानी। और प्रति सन्ध्याकाल अशोक पुष्प की रक्तकान्त पंखड़ियो के लाल रग से तुम्हारे अगुलि प्रान्तो को लेशमात्र रेणु से रग सकूँ और यदि वहाँ कुछ रेणु-कण शेष रह गए हों तो उनको लगाकर पोछ सकूँ, यही पुरस्कार चाहता हूँ रानी !

रानी . भृत्य, तुम्हारा आवेदन मुझे स्वीकार है, मेरे पास अनेक मन्त्री है, अपार सैन्य है, अनेक सेनापति है जो विविध पदो पर कार्य कर रहे है। किन्तु तुम मेरे स्वेच्छा वन्दी दास होगे जो ख्यातिहीन और कर्महीन रहते हैं। आज से राज्य-सभा के वाहरी भाग मे रहो सेवक, अब से तुम हमारे उपवन के मालाकार हो।
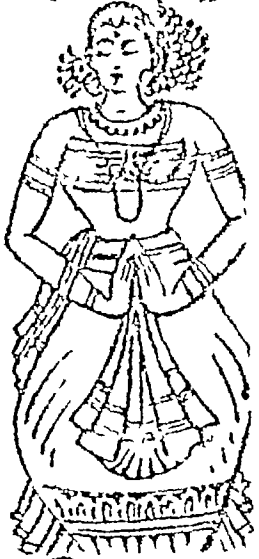
बिखरे फूल

प्रभात काल का तरुण रवि उषा की स्तुति-हेतु स्वर्ण-पत्र सजाकर लाया । उस समय असीम नीला जल हर्ष से सिहर रहा था; किरण-तूलिका गगन-भाल पर रंगावलि अंकित कर रही थी ।

मछियारे सागर-तट पर बैठकर जाल बुन रहे थे । थोडी देर मे वह मत्स्य-जाल फैला दिया गया । न जाने कैसे समुद्र की अथाह गहराई से विविध विलक्षण रत्न-समुच्चय उस जाल मे सिमटकर ऊपर आ गया । उस रत्न-राशि के कुछ रत्न स्मित-हास्य समान उज्ज्वल थे और कुछ अश्रुकण-से बुझे हुए थे और कुछ थे सलज्ज नव-वधु के आरक्त कपोलो के समान गुलाबी । समय बीतता गया । सूर्य ने पूर्व दिशा से प्रस्थान प्रारम्भ किया । मध्यान्ह का मार्तण्ड चमकने लगा । सन्ध्या आई । गोधूलि से आकाश धूसर हो गया । मछियारे घरो को लौट चले ।

मछुआ दिन-भर का बोझ लिये घर आया । आकाश पर चाँद उठ रहा था । ग्राम-पथ निर्जन था । सब आँखे बन्द करके सो रहे थे । विरही पक्षी कातर स्वर से प्रेमी की पुकार कर रहा था ।

मत्स्य-जाल मे सिमटे रत्नो को एकटक देखने के बाद उसने कहा : "यह धन कैसा ? मेरे लिए इसका क्या प्रयो-जन ? इसे पाने को मैने किसी से युद्ध नही किया और न मैने मूल्य देकर हाट से लिया है; इनका आदर कौन करेगा ?"

रात-भर उन रत्नो को वह रास्ते पर बिखेरता रहा ।

प्रभात के मार्ग से जाने वाले पथिको ने उन बिखरे फूलो को चुना और दूर देशो मे पहुँचा दिया ।
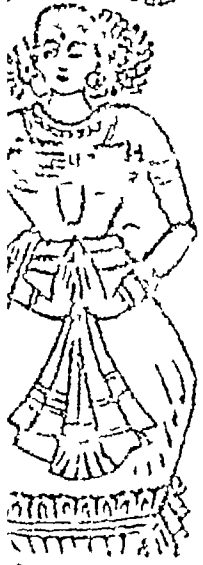
अपरिचित यात्री

मै चचल हूँ, तृषित हूँ; दूर की लुभावनी वस्तुओ की लिप्सा मेरे मन में सदा जागृत रहती है। मेरी आत्मा अनन्त दूरी के आचल को छूना चाहती है।

दिन बीतता जाता है। मै उन्मन-सा वातायन पर बैठा तेरी बाट जोहता रहता हूँ। मेरे मन-प्राण मे तेरा स्पर्श पाने की तृषा भरी है।

हे विराट्, तुम दूर से अपनी वशी बजाते हो। मै भूल जाता हूँ, सदा भूल जाता हूँ कि व्योमाकाश के अनन्त पथ पर उडने के लिए मेरे पास पख नही है, मै उड नही सकता।

मै जिज्ञासु हूँ, प्रवासी हूँ। तुम दुर्लभ दुराशा के समान अप्राप्य हो। तुम मुझे कौनसी कथा कहा करते हो, मै नही जानता।

तुम्हारी भाषा तुमसे ही सुनता हूँ। हृदय कहता है वह भी तुम्हारा स्वभापी है, तुम्हारे इगितो को पहचानता है।

हे सुदूर! विपुल सुदूर! तुम वशी के स्वर बजाते हो। मै सदा भूल जाता हूँ कि उन सुन्दर पथ-वीथिकाओ का मुझे कोई ज्ञान नही और मेरे पास वहाँ तक पहुँचने का कोई वाहन नही।

मै अपने ही हृदयाकाश मे निरुद्देश्य विहार करने वाला यात्री हूँ।
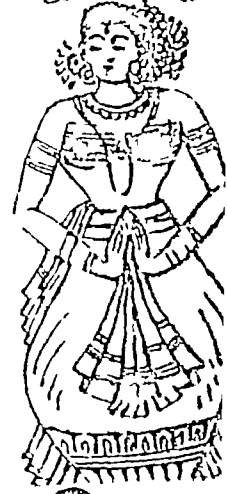
मेरी कुटिया जन-पथ के किनारे बनी थी। व्यापारी अपनी धनधान्य से भरी नौकाएँ मेरी कुटिया के निकट बाँधकर बाज़ार चले जाते थे। स्वेच्छा से वे वहाँ आते, और स्वच्छन्दता से यत्र-तत्र भ्रमण करते थे। मै कुटी के बाहर बैठे यह सब देखा करता और सारा दिवस ऐसे ही व्यतीत कर देता। उन्हे 'लौट जाओ' कहने का साहस नही होता।

दिन-रात अपरिचित आगन्तुको की आहट से मेरी कुटिया के द्वार गूँजने लगे। मै पूछ बैठा: "तुम कौन हो?" सोचता हूँ, क्या मेरा उनसे कोई परिचय न था।

उनमे से कुछ थे जिन्हें मेरी अगुलियाँ पहचानती थी, कुछ को मेरी नस-नस मे प्रवाहित रक्त पहचानता था और कुछ मेरे स्वप्नो के परिचित भी थे। उन्हे 'लौट जाओ' कहने का साहस नही होता था।

एक दिन मैने उन्हे निकट आने का सकेत किया। कहा: "मेरी कुटिया मे आओ; जब चाहे आओ, मै तुम्हारा स्वागत करूँगा।"

पौ फटने की वेला मे मन्दिर की घंटियाँ बजने लगी। अजलि मे अर्घ्य-नैवेद्य लिये वे आ रहे थे। उनके पैर गुलाब की पंखडियों-से रक्तिम थे और उनके मुख उषाकाल की अरुण कान्ति से आभासित। मैने उनसे अनुरोध किया: "पुष्प-चयन के लिए मेरे पुष्पोद्यान को कृतार्थ करो।"

मध्यान्ह मे राजद्वार की दुन्दुभि बज उठी। न मालूम क्यों वे अपना काम-काज छोड़ मेरी कुटिया के समीप
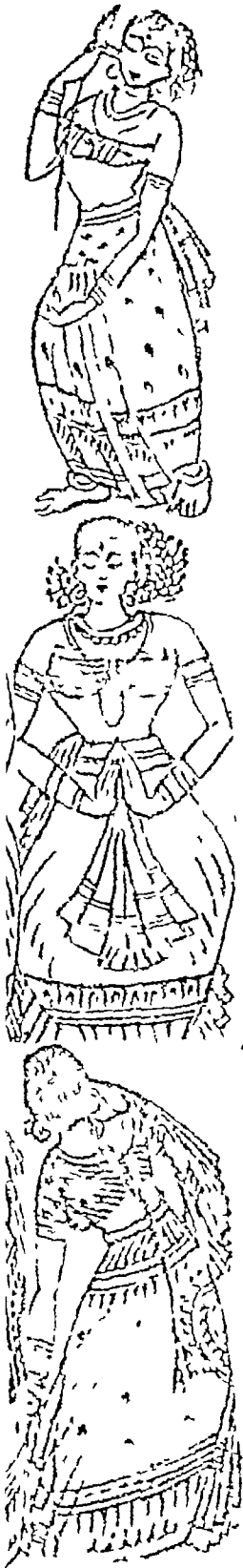
एकत्र हो गए। उनके केशो मे गुँथे फूल कुम्हला गए थे और उनकी वीणा का स्वर मन्द हो गया था।

मैंने उन्हे आदर से बुलाकर कहा "मेरी कुटिया मे लगे वृक्ष की घनी छाया में आओ, विश्राम करो।"

रात के पक्षियो का डरावना शब्द कँपा देने वाला था। ऐसे समय न जाने कौन था, जो धीरे-धीरे कुटिया की ओर बढा और द्वार खटखटाने लगा। मैंने अँधेरे मे ही उसके मुख को पहचाना, किन्तु मुख से एक शब्द न कहा। आकाश मे गहन मौन भरा था। अपने मौन अतिथि को मैं कैसे कहता 'लौट जाओ'। अधकार की धुँधली-सी झिलमिल मे उसका पहचाना-सा मुख देखता रहा, और इसी तरह स्वप्न मे पहर-के-पहर बीत गए।

शुभ क्षण

ओ माँ, आज राजकुमार का रथ हमारी कुटी के सन्मुख पथ पर आने वाला है। आज प्रभात मे गृहकाज कैसे होगा भला ?

माँ, बता तो, आज कौनसा सिगार करूँ ? किस फूल की वेणी बाँधूँ और किस रग के कपडे पहनूँ ?

माँ, तुझे क्या हो गया ? तू मेरी ओर ऐसे अचरज से आँख फाड़-फाडकर क्यो देखती है ?

माँ, मै जानती हूँ जिस वातायन पर खडी होऊँगी, उस ओर वह एक बार भी आँख उठाकर नही देखेगा। मै जानती हूँ एक निमेष मे ही वह ओझल हो जायगा और दूर, बहुत दूर, चला जायगा।

केवल उसकी वशी, न जाने किस को लक्ष्य कर, व्याकुल स्वर मे बजती रहेगी।

फिर भी माँ, आज राजकुमार हमारे घर के सन्मुख वाले पथ पर आयेगा। उस निमेप-भर के दर्शन के लिए भी मै सुन्दर वेश क्यों न पहनूँ माँ !

ओ माँ, राजकुमार हमारे घर के सन्मुख पथ पर आकर चला गया। उसके स्वर्ण शिखर छूकर प्रभाती किरणे झिलमिला रही थी।

घूँघट खोलकर वातायन से मैने उसे निमेप-भर देखा, और अपना कण्ठहार उतारकर उसकी पथ-धूलि पर बिखेर दिया।
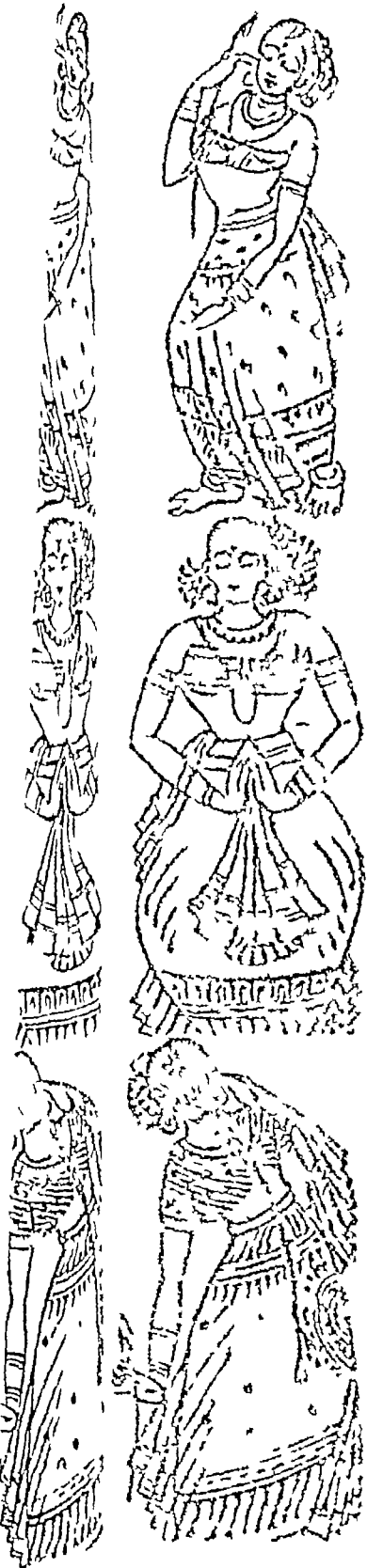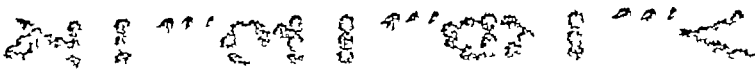
माँ, तुझे क्या हो गया ? अवाक् नयनो से किसे देख रही हो ?

मै जानती हूँ मेरा वह हार रथ के चक्र मे गुँथ गया। चक्र घूमने पर वह घर के सन्मुख वाले पथ की धूल मे मिल गया। किसी को यह ज्ञात नही कि मैने क्या दिया और किसे दिया। पथ की धूल ने उस पर परदा डाल दिया।

फिर भी राजकुमार हमारे घर के सन्मुख पथ पर आकर चला गया और मैने अपने वक्ष का मणि उतारकर न जाने क्यो उसके आगे फेक दिया।
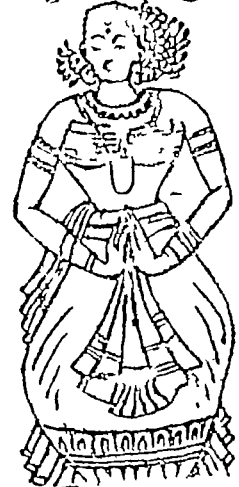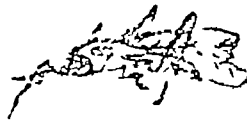
अष्ट लग्न

शयन-कक्ष के सब प्रदीप बुझ गए थे; प्रभात के कोकिल-स्वर के संग मै भी शय्या से जाग उठी थी।

अलस चरणो के साथ वातायन पर जाकर मै बैठ गई। मेरे शिथिल कुन्तलो पर नूतन मालिका के फूल पडे थे।

ऐसे समय अरुण-धूसर पथ पर एक तरुण पथिक का राजरथ आया। उसके स्वर्ण-मुकुट पर उषा किरणे चमक रही थी और गले मे मुक्तामाल झूल रहा था। सामने आकर वह रुक गया और कातर स्वर मे उसने मुझसे पूछा. "वह कहाॅ है ? वह कहाँ है ?"

हाय, लाज की मारी मै कह न सकी कि 'नवीन पथिक, वह मै ही हूँ, वही मै हूँ।'

गोधूलि वेला आई, दीपक अभी जले नही थे। हाथ मे स्वर्ण-पुष्प लिये वातायन पर बैठी मै कबरी बाॅध रही थी।

ऐसे समय सन्ध्या-धूसर पथ पर उस तरुण पथिक का रथ फिर मेरे द्वार के निकट आया। रथ के घोड़े घाम और थकान से चूर थे, उनके मुख से फेन झर रहा था। तरुण के वसन-भूषण धूलि-धूसर हो गए थे।

उसने फिर कातर स्वर में पूछा : "वह कहाॅ है ?"

क्लान्त पैरो से द्वार तक जा मैने द्वार बन्द कर दिये। लाज की मारी मै फिर भी न कह सकी कि 'थके पथिक, वह मै ही हूँ, मै ही हूँ।'
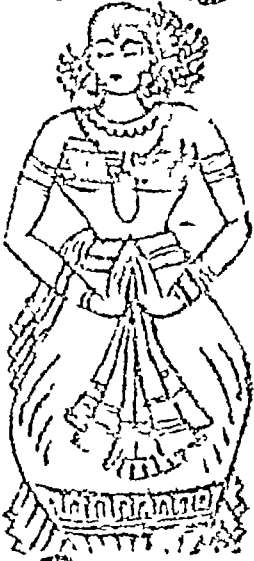
फागुन की रात है, घर के सब दीप जल रहे है। दक्षिण की गरम वायु सारे शरीर को तपा रही है।

धूप की चमक से सारा घर धूसर है, अगुरुगन्ध से सारा देह व्याकुल है। मयूरकण्ठी शिथिल पडी है, दूर्वा श्यामल आँचल वक्ष पर रखा है।

ऐसे समय विजन राजपथ पर मै गई और वातायन तले की धूल पर बैठ गई।

तीन पहर रात बीत गई, मै वही अकेली बैठी यही गाती रही "हताश पथिक, वह मै ही हूँ, वही मै हूँ।"
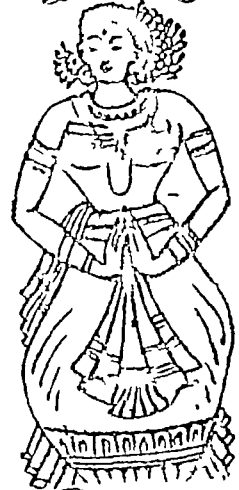
विवशता

जब मै अकेली नीरव निशीथ मे राजपथ पर नव-अभिसार को जाती हूँ, पवन नही चलता, सकल पौर-जीवन मे मौन छाया होता है ।

उस समय केवल मेरे पैरो के नूपुर ही झनझना उठते है । उसके अधीर मुखर स्वर को सुन-सुनकर मै लाज से मर जाती हूँ ।

जब मै उसकी पदचाप सुनने को वातायन मे चुपचाप बैठती हूँ तव उस निविड निशा मे तारे भी अनिमेष रहते है, वृक्षों के पत्ते मरमर नही करते, यमुना की लहरे भी नही हिलती, जनहीन पथ अँधेरे मे मिल जाता है ।

उस समय मेरे अन्तर का मेरा ही हृदय उलस-विलस-कर नाच उठता है और अधीर पागल-सा बन कोलाहल करने लगता है । उसके सब बन्धन टूट जाते है ।

वह मधुर-मिलन की रात आई, स्तब्ध रात्रि ने चारो दिशाएं ढक ली, दीपक बुझ गए, द्वार बन्द हो गए, श्रावण के मेघ चारों ओर घिर गए ।

उस मौन अन्धकार मे केवल मेरे वक्ष पर पड़ी मेरी मणिमाला ही बार-बार दीपक समान चमक उठती है । उसे कहाँ छिपाऊँ, किस प्रकार दूर करूँ, इस निर्लज्ज आभूषण का क्या उपाय करूँ ?

हम तो इस गुप्त प्रेम-कथा को अपने तक ही रखते है, लेकिन वासन्ती मलय हमारी ही वात सबको सुनाती है,
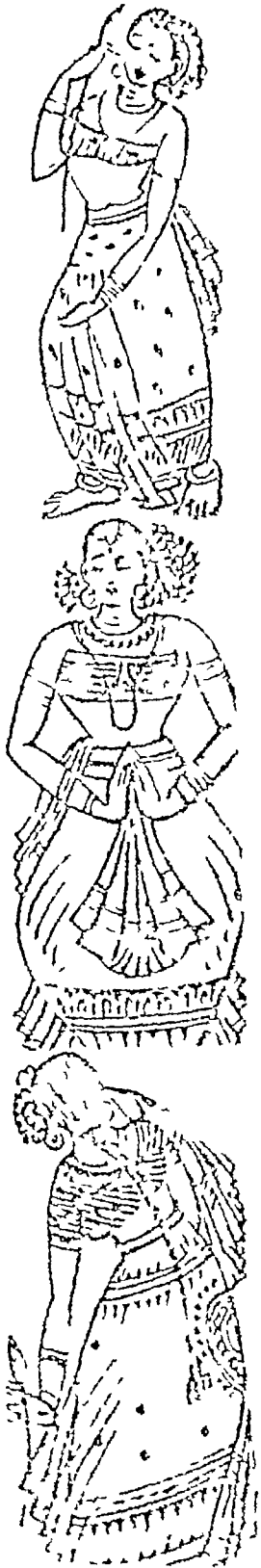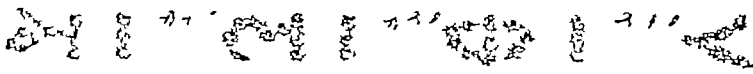
कोयल हमारे ही राग को गाती है, वन-वन अकेली बहती नदी भी कलकल स्वर मे हमारी ही गुप्त कहानी सब पर प्रकट कर रही है।

और तो और, अपनी वीणा की तारो मे हम जिस कथा का गोपन करना चाहते है, झकार के छल से वही कथा प्रकट होती जा रही है।
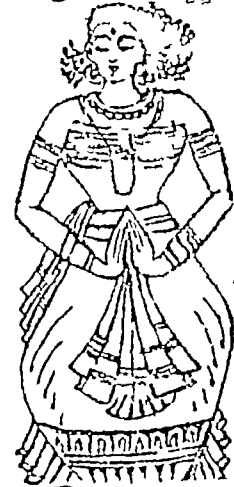
अतिथि

अपने सब काज समेट ले बहू, अतिथि आया है।

सुन रही हो न ! वह तेरे द्वार पर बँधी साकल को धीमे-धीमे खटखटा रहा है।

देख, कही तेरे पैरों के झाँझर ऊँचे स्वर से न बज उठे, और उससे भेट के लिए जाते हुए तेरे चरण हठात् चचल न हो जायँ।

सब काज समेट ले वहू, तेरे गृहद्वार पर अतिथि आया है।

नहीं वहू, यह हवा का झोंका नहीं है; तेरा भय मिथ्या है। आज फागुन की पूर्णिमा के चाँद से आकाश में आलोक भर गया है। शका हो तो माथे पर घूँघट डाल, हाथ मे दीपक लेकर द्वार पर जा। यह वही है वहू, उसी की आहट है, आँधी के झोको की नही।

शका हो तो बहू, उससे एक भी शब्द न वोलना, उससे भेट होने पर द्वार के एक कोने पर नीरव खड़े रहना।

यदि वह प्रश्न पूछे तो धीमे से पलको को झुका लेना और मौन रहना और देख, जब तू उसे दीपक लेकर रास्ता दिखलाएगी तो ध्यान रखना कही तेरे हाथ के कगन ऊँचे स्वर से न बज उठे।

वहू, तेरा गृहकाज पूरा नही हुआ क्या ?

सुनो, अतिथि आ गया है। अभी तक तूने आरती का
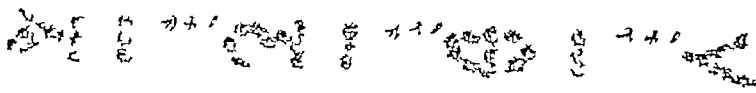
थाल नही सजाया ? गोष्ठगृह के प्रदीप की ज्वाला नही जलाई ? सीमन्त पर यत्न से सिन्दूर-बिन्दू नही लगाया ? सन्ध्या का साज अभी तक पूरा नही किया तूने ?

सुन रही हो न, तेरे गृहद्वार पर अतिथि आया है। तेरा सब गृहकाज पूर्ण हो गया क्या ?
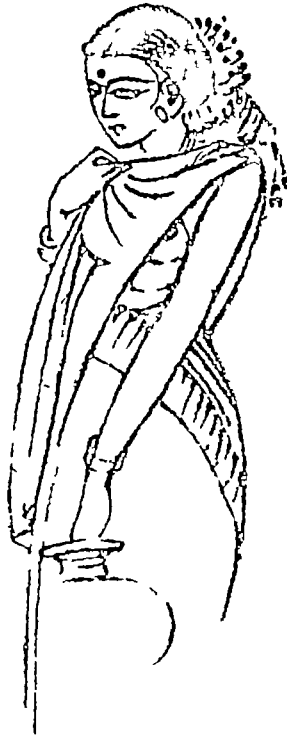
हृदय यमुना

यदि तुझे कलश भरना है तो आ, मेरे हृदय-सरोवर पर आ।

यहाँ का अतल गम्भीर जल तेरे दोनो चरण धो देगा।

आज गहन मेघराशि निविड कुन्तलो सदृश मेरे दोनों तटो पर छा गई है।

तेरे पैरो की आहट और नूपुरों की झनझन को मै खूब पहचानता हूँ। वह मेरे हृदय पर अकित है। तू एकाकी क्यो बैठी है ? यदि तुझे गागर भरनी है तो आ, मेरे हृदय-सरोवर पर आ।

यदि तुझे अलस विश्राम करना है, सब कुछ भूलकर पानी की लहरो पर कलश तैराना है तो भी आ, मेरे हृदय-सरोवर पर आ।

यहाँ सुन्दर श्याम दूर्वादिल है, नवनील नभस्थल है और अगणित फूलो से भरा किनारा है।

यहाँ, जैसे पक्षी अपने घोंसले से उड़कर आकाश मे स्वच्छन्द विचरते है, तेरे स्वप्न भी तेरी दो काली आँखो से वाहर निकलकर स्वतन्त्र विहार कर सकेगे। तेरा आँचल कन्धों से खिसककर नीचे ढुलक जायगा। यदि तुझे सव भूलकर अपना कलश पानी मे छोड़ अलसाई घड़ियाँ विताना है तो भी आ, मेरे हृदय-सरोवर पर आ।

यदि तुझे तट का खेल-खिलवाड़ छोड़कर अवगाहन
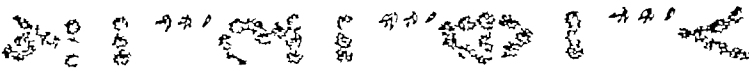
करना है तो भी आ, मेरे सरोवर पर आ। यहाँ गहन तल है।

नीले रग की ओढनी तट पर रख दे, सुनील जल ही तेरी लाज ढक लेगा। स्नेहार्त तरगे तेरे कठ को चूमने और तेरे कानो मे भेद-भरी बाते बताने के लिए उछल-उछलकर चारो पार्श्वों से ऊपर उठने लगेगी, कभी हँसेगी, कभी रोयेगी। यदि तुझे अवगाहन करना है तो भी आ, मेरे सरोवर के गहन तल मे आ।

यदि तुझे उन्मत्त होकर मौत की घाटी मे कूदना है तो भी आ, मेरा सरोवर-सलिल बडा गहरा है।

यह समुद्र-सा स्निग्ध, शान्त और अगाध है। न इसका तल है न तीर। यह मृत्यु-सा स्थिर और नीरव है। न यहॉ दिन और रात की सीमा है और न आदि अन्त का परिणाम है। आ, यदि तुझे मौत की घाटी उतरना है तो भी मेरे हृदय-सरोवर पर आ।
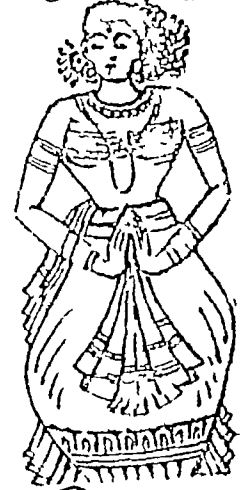
प्यासी

मुझे कुछ भी न चाहिए।

वृक्ष की ओट में मैं नतशिर चुपचाप खडा रहा।

वहाँ भोर की आँखो मे अभी तक अलस अरुणाई भरी थी और पवन के पख अभी तक ओस से भारी थे।

नूतन तृणो मे उठती भीनी-भीनी सुवास अभी तक मन्द प्रभाती पवन मे भरी हुई थी।

तू अकेली, कुटिया के बाहर छाया मे बैठी अपने नवनीत कोमल हाथो से दूध दोह रही थी। मै वहाँ केवल विस्मय-विमुग्ध-सा चुपचाप खड़ा रहा।

मैंने कुछ भी नही कहा। वकुल शाखा पर बैठा पक्षी जाने कैसे मेरी व्याकुलता जान गया। आम्र-वृक्ष स्वय ही गाँव के रास्ते पर अपनी खीले बिखेरने लगे और गुंजन-स्वर करती मधुमक्खियाँ एक के बाद एक आकर गुनगुनाने लगी। सरोवर के पास वाले शिव-मन्दिर का द्वार खुला, सन्यासी शान्त गम्भीर स्वर मे प्रभाती गीत गाने लगा। तू अपने घुटनों पर दूध का घट थाम वृक्ष-तले बैठ दूध दोहने लगी। मै अपना रिक्त पात्र लेकर चुपचाप लुब्ध-सा खड़ा रहा।

मै तेरे पास नही आया। उन्मत्त हवा ने तेरे अलकों को न जाने कैसा कर दिया! देवालय का घण्टा वज उठा, आकाश जाग गया, पृथ्वी देवता से आशीष माँगने ऊर्ध्व गगन मे उड़ चली, कटि पर गागर थामे ग्राम-वधुएँ लौट पड़ी। तेरी कलई के कगन झनझनाने लगे और दूध का पात्र फेन से ऊपर तक भर गया।

मानो सम्पूर्ण विश्व के प्राण क्षुब्ध हो गए थे।

कवि का वय

महाकवि, साँझ की वेला आ गई, केश पककर धवल होने लगे तुम्हारे।

अपने गीतो मे क्या उस पार की पुकार नही सुना करते तुम ?

कवि ने कहा सन्ध्या-समय सत्य ही आ गया, तथापि अभी मै उस पार की पुकार नही सुन रहा। किसलिए ? इसलिए कि कही ऐसा न हो कोई पास की वकुल वन छाया से मुझे पुकार उठे, अथवा कोई विरह-विकल प्रेमी मिलन को अधीर हो उठे और मेरे गीतो की गूँज न सुन पाये, अथवा दो प्यासे नेत्र मिलन से पूर्व मेरे गीतो से पुलक प्रेरणा पाने की प्रतीक्षा ही करते रह जायँ।

कदाचित् मै भी लोकधारा से विलग हो लोकान्तर के स्वर-सचय मे व्यस्त हो जाऊँ तब प्रेम-पुलकित वीणा के इस लोक के स्वर-कपन को गीतो मे कौन पिरोएगा ?

एक दिन ··

जब सन्ध्या-तारक उदय होकर अस्त हो गया हो,

नदी-तट पर श्मशान की जलती चिता के दहकते अगारे बुझ गए हो,

श्रृगालदल ऊँचे स्वर से चीत्कार करने लगे हो, कृष्ण-पक्ष का चाँद पीला पड गया हो,

ऐसे समय यदि कोई सद्य विरक्त पथिक आ जाय और सिर झुका सप्तर्षियो को देखने लगे और गहन अन्ध-कार का शब्दहीन गीत सुनने को तन्मय हो जाय और मै
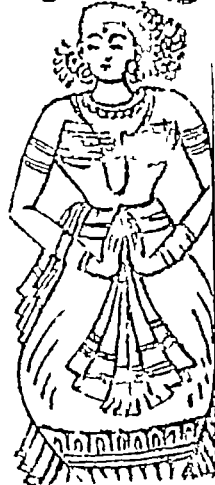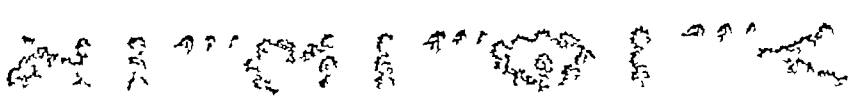
-MANISHI DEY-

भी अपना द्वार वन्द कर, ससारी शृङ्खलाओ से मुक्त होने के स्वप्नो मे डूब जाऊँ, तब उस विरक्त पार्थव को जीवन के रहस्य-गीत कौन सुनाएगा ?

मेरे केशो मे धवलिमा झलकने लगी है, किन्तु मै आज भी वैसा ही तरुण हूँ जैसा कभी था और अब भी उतना ही वृद्ध हूँ जितना इस गाँव का छोटे-से-छोटा वालक है।

कुछ लोगो के अधरों पर सदा मधुमय निर्मल हास्य खेलता है और कुछ की भृकुटियाँ अल्पवय मे ही छल-कपट की तिरछी रेखाओ से कुटिल हो जाती है।

कुछ के आँसू आँखो मे छलक-छलक आते है और कुछ के आँसू मन-ही-मन सूख जाते है।

कुछ प्रमादी घर के कोने मे ही बैठे-बैठे थक जाते है और कुछ पुरुषार्थी अपना कार्य-रथ जगत् के ओर-छोर मे अन्तिम श्वासो तक दौडाते रहकर भी नही थकते।

कुछ अपने एकाकी निरापद् क्षेत्र में भी अपने योग्य स्थान नही बना पाते और कुछ है जो लक्षकोटि जनारण्य मे भी अपना यशस्वी मार्ग बना लेते है।

मुझे ससार के कोटि-कोटि जनो मे रहकर गीत गाने है। उस पार के गीत गाने का समय ही नही है मेरे पास।
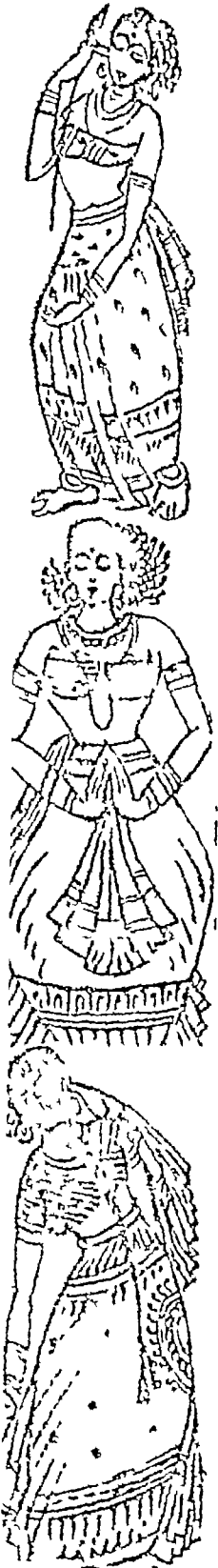
पथे

एक दिन ··

ग्राम-पथ पर मै अकारण ही चला जा रहा था; वेणु-वन मे वायु प्रचण्ड वेग से चल रही थी।

परछाइयाँ वेग से भागते हुए प्रकाश के पैरो पर लिपटने के लिए हाथ पसार रही थी, कोयल अपने समरस सगीत से ऊब चुकी थी, मै मार्ग पर एकाकी अकारण ही चला जा रहा था।

जलाशय के पास की कुटीर पर वृक्ष की शाखाएँ झुकी हुई थी। कुटीर के अन्दर कोई अपने नित्य के काम-काज मे लगी थी, उसकी चूडियो का सगीत कुटीर के कोने से उठ रहा था।

मै उस कुटीर के सामने जाते-जाते अकारण ही रुक गया।

वह पेचदार सँकरी पगडण्डी सरसो के कई खेतो और वागो के वीच से होकर गुजरती थी। वह मार्ग कितने ही गाँवो के मन्दिरो, गाँवो के चरागाहो और ग्राम्य-नदी के कितने ही घाटो को छूता जाता था।

मै उस कुटीर के सामने जाते-जाते अकारण ही रुक गया।

इससे पहले एक दिवस मुझे याद आता है—आम्र-गन्ध से भारी फागुन मास का उदास पवन बह रहा था, वसन्त की मरमर ध्वनि मे अलस मद भरा था, घाट की छलछलाती लहरें उचक-उचककर कलश को थपथपा रही थी। वे सब वाते अकारण ही याद आ गई।
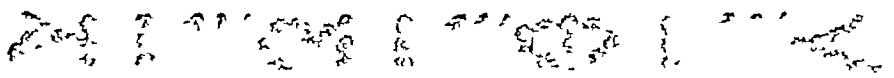
पथ की परछाइयाँ दीर्घ होती जा रही है; थके पशु अपने घरो की ओर लौट रहे है; चरागाहो की निर्जनता घनी हो गई है; गॉव के लोग नदी-किनारे नौका की प्रतीक्षा मे बैठे है।

मै भी धीमे-धीमे अकारण ही पीछे लौट रहा हूँ।
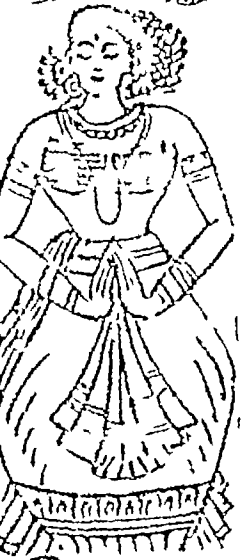
सरल प्रेम

हृदय के निकट हृदय आया, नयनो से नयन मिले, दो प्राणियो के प्रणय की यही छोटी सी कहानी है।

चैत्र मास की शुक्ला सन्ध्या है, हवा मे कस्तूरी की मादक सुवास भरी है, मेरी वशी भूमि पर गिरी पडी है और तेरे पास पुष्पहार पडा है। हमारे-तुम्हारे प्रणय का यही रूप है और यही एकान्त का परिचय है।

वसन्ती रग मे रँगी तेरी ओढनी मेरी आँखो मे मद ढाल रही है। तेरे हाथो से गुँथा जूही का हार मेरे वक्ष पर पडा है।

यह भी एक विचित्र खेल है! इसमे एक ही आदान है, एक ही प्रदान, एक ही प्रकाश है एक ही गोपन, एक ही मुस्कान है और एक ही लाज। दो जनो का यही परिचय है। तुम्हारे-हमारे प्रणय की यही छोटी सी कहानी है।

मधुमास के मिलन मे कोई ऐसा गोपनीय रहस्य नही, असीम की कोई ऐसी अबोध कथा नही, जो मन मे समाती न हो। इसमे सौन्दर्य की छाया नही और अन्धकार की गहराई मे उतरकर कुछ टटोलने की कामना भी नही। मधुमास का यह मोदमय मिलन ही हमारा परिचय है।

हम शब्दो की परिधि से दूर किसी अनन्त मौन की घाटी मे जाने का विचार नही करते, हम किसी लोकातीत वस्तु को पाने की आशा से महाशून्य मे अपनी कल्पना के पख नही फैलाते। जो हम देते है और पाते है वही हमारे लिए बहुत है।
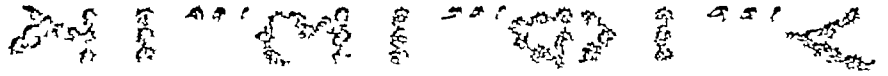
हम आनन्द की द्राक्षाकलियों का दलन कर कष्टो का आसव नही बनाते। मधुमास के मोदमय मिलन का यही हमारा परिचय है।
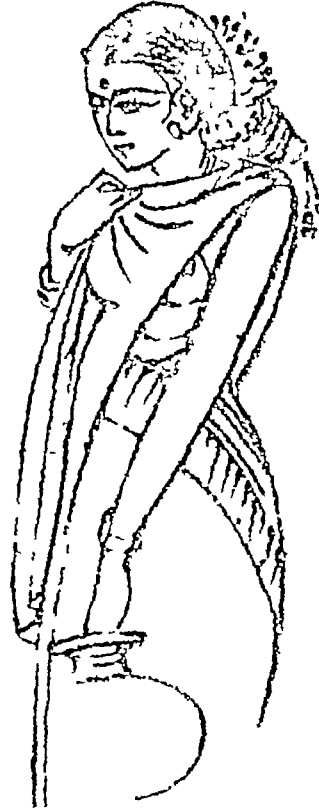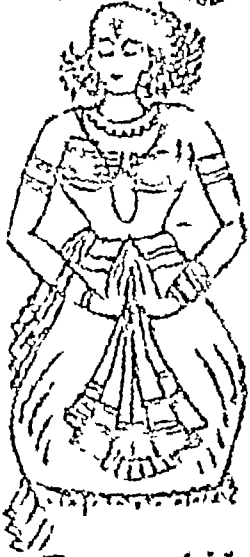
एक गाँव

हम दोनो का एक ही गाँव था, यही हमारा एकमात्र सुख था ।

गाँव के एक वृक्ष पर बैठा एक पीताश्म पक्षी मधुर गीत गाता है और मेरे हृदय मे आनन्द-विह्वल नृत्य भर देता है ।

उसके पालतू भेडो का युगल हमारे बाजरे के खेत वाले वृक्ष की छाया मे चरने को आता है, मै उसे गोद मे उठा लेता हूँ ।

हमारे गाँव का नाम खजना है और हमारे गाँव की नदी को सब अजना नाम से पुकारते है । मेरा रजना नाम गाँव के सब लोग जानते है ।

हम दोनो के बीच केवल एक खेत की दूरी है । जो मधुमक्खियाँ हमारे कु ज मे अपना छत्ता बनाती है वे मधु-रस का सचय करने उसके वनपुष्पो पर मॅडराती है । उसके घाट पर बहाये हुए फूल हमारे घाट को छूकर बहते है ।

हमारे इसी गाँव का नाम खजना है और हमारे गाँव की नदी को सब अजना नाम से पुकारते है । मेरा नाम गाँव के सब लोग जानते है और वह नाम रजना है ।

उसके घर की ओर मुडनेवाली गली, वसन्त मे आम्र-मजरियो की सुवास से महक उठती है ।

जब उसके सरसो के खेत पक जाते है तो हमारे खेत भी पीले रग की चुनरी ओढ लेते है । उसकी कुटिया पर मुस्काने वाले तारे हमारी ओर भी हास्यमय दृष्टि से आँख झपकते है ।
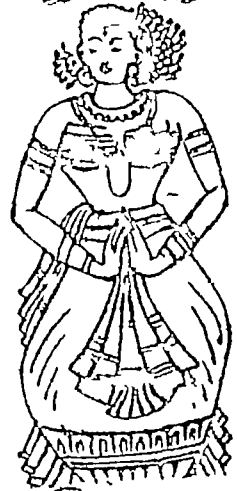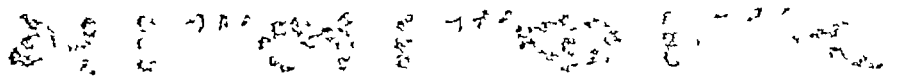
उसका जलाशय भरने को जब श्रावण धारा झरती है, तो हमारे वन मे कदम्ब के फूल फूट उठते हैं।

हमारे गाँव का नाम खजना है और गाँव की नदी का नाम अजना है। मेरा नाम रजना है, जो गाँव-भर को मालूम है।
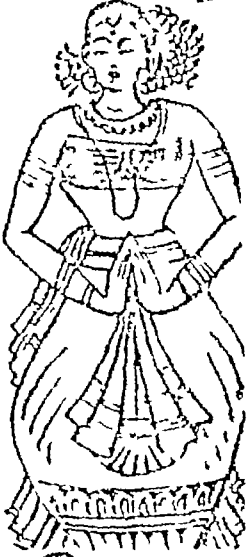
एक दृष्टि

कक्ष मे कलस लिये वह कुटिया से छूते पथ पर चली जा रही थी।

अकस्मात् घूमकर उसने, जाने क्यो, घूँघट के भीतर से देखा।

उस दृष्टिपात ने पवन के उस प्रवाह की तरह मेरे रोम-रोम को चचल कर दिया जो जलाशय के प्रशान्त जल को तरगित कर देता है। क्षण-भर दूर से परस्पर का यह दृष्टि-पात ही मेरा-उसका परिचय था।

यह निमेष-भर की दृष्टि सन्ध्या-काल के उस पक्षी की तरह थी जो दीपहीन कमरे के वातायन से आकर उडता हुआ बाहर निकलकर रात्रि के अन्धकार मे लुप्त हो जाता है।

तूने एकमात्र कौतूहलवश इस पथ के एकमात्र पथिक पर दृष्टिपात किया।

जिस तरह आचल में ढकी हो वैसी ही ढकी रहो। पथ पर जाते-जाते तूने जरा थमकर दृष्टिपात क्यो किया ? यह लीला क्यो की ? कक्ष मे कलस लिये तू जा रही थी, अचानक ही घूमकर घूँघट हटाकर निमिष-मात्र क्यो देखा ?
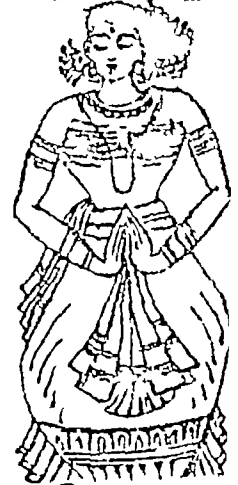
सकरुण

सखि, क्या प्रतिदिन इसी प्रकार आकर चला जायगा वह ?

तू जा और मेरी वेणी का एक फूल उसे दे दे।

यदि वह पूछे किसने दिया, किस बाग का है, तब मेरी शपथ, मेरा नाम न लेना।

सखि, वह वृक्ष के नीचे धूल मे बैठ जाता है। जा, वहाँ वकुल पुष्पो का आसन बिछा दे।

अपनी सकरुण आँखो से वह मेरे मन मे करुणा जगा देता है; किससे क्या कहना चाहता है, कुछ भी नही बोलता।

सखि, क्या प्रतिदिन इसी प्रकार आकर चला जायगा वह ?
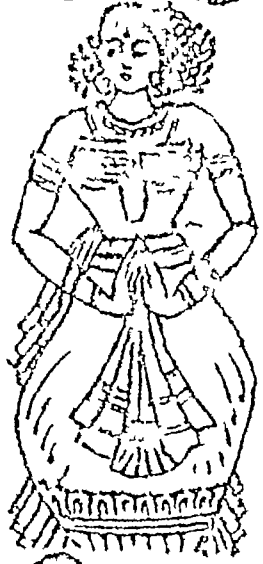
द्वार पर

प्रभात के समय ही उस यात्री युवक ने मेरे द्वार पर आने का क्यो विचार किया ?

आते-जाते हर बार मै उसके सामने से गुज़रती हूँ। मेरी आँखे उसके मुख पर अनायास रुक जाती है। बोलूँ या न बोलूँ, कुछ सूझता नही। सोचती हूँ, वह मेरे द्वार पर क्यो आया ?

आषाढ की मेघावृत राते बहुत काली हो जाती है। शरद् का आकाश हल्के नीले रग में रँग जाता है। बसन्त की सन्ध्या दक्षिण के पवन से चचल हो उठती है। वह युवक हर ऋतु मे अपने गीतो को नये स्वरो से गूँथ लेता है।

मै जब अपना काम समाप्त कर लेती हूँ तो आँखो में एक स्वप्निल कुहरा भर जाता है।

आह, वह मेरे द्वार पर क्यों आया ?
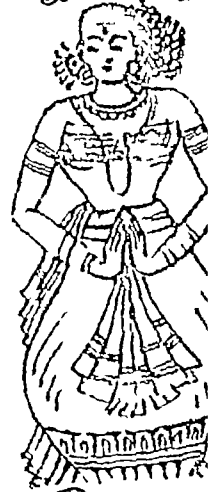
आंचल का स्पर्श

सहसा मेरे आंचल प्रान्त से छूती हुई वह मेरे निकट से चली गई ।

मैंने उसे पार्श्व से देखा, सिहरन-भरा वह स्पर्श आंचल की वायु के साथ आकर चला गया ।

हृदय-वन मे एक अनजाना-सा उच्छ्वास उठा; टूटे हुए पुष्प की पखुड़ी जैसे हवा मे उड़कर लुप्त हो जाती है वैसे ही वह उडता हुआ स्पर्श मुझे छूकर क्षण-भर मे अदृश्य हो गया ।

जैसे वशी का स्वर गूँजता रहता है, और फूलों का सुवास हवा मे भर जाता है, वैसे ही अब भी मेरा हृदय उस स्पर्श का अनुभव कर रहा है । कौन जाने वह उसके सम्पूर्ण देह का कौनसा आकुल नि.श्वास था या उसके हृदय की कौन मर्म-वार्ता थी, जो सर्वांग से मुझे जाने कौनसी भेद-भरी कथा कह गई ।
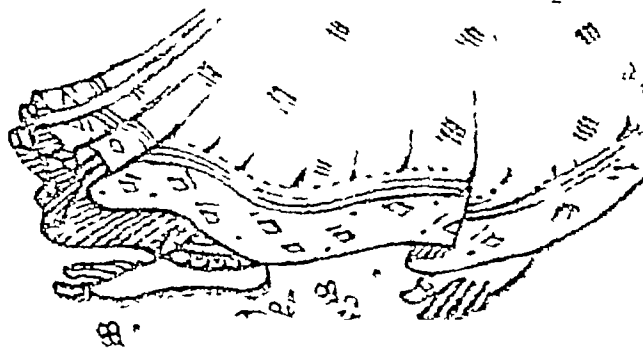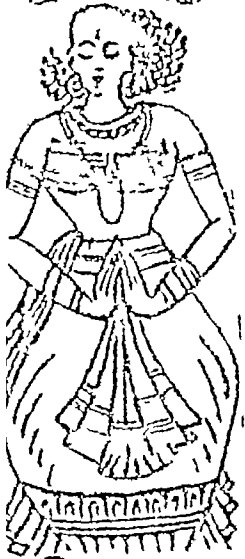
लीला

अरी, क्यो अकेली बैठी-बैठी तू अपने कगन झनझना रही है ? इसमे कितना छल भरा है !

कनक-कलश में जल भर ले और वापिस घर लौट चल।

अरी, अपने हाथो से पानी छलका-छलकाकर कौन-सा खेल खेल रही है तू, और किसलिए क्षण-क्षण चकित नयनो से देखती है ?

यमुना की लहरे अलसायी-सी खेल रही है और हास्य-भरे कल-स्वर मे एक-दूसरे से कानाफूसी कर रही है। इस खेल मे कितना छल भरा है !

नदी के उस पार क्षितिज पर मेघो का मेला जुडा है, उसकी सस्मित रक्ताभ छाया तेरे मुख पर पड रही है।

इसमे कितना छल भरा है !

एकान्त

मित्र, अपने मन का भेद अपने हृदय मे ही छिपाकर मत रख ।

मुझसे कह—एकान्त मे, केवल मुझसे कह !

तेरी मृदु हास्य और मन्द स्वर मे कही बात को मेरे कान नही सुनेंगे, केवल मेरा हृदय सुनेगा ।

रात्रि गहन है, घर मे निबिड़ नीरवता है, पक्षियो के घोसलो में निद्रा का राज्य है।

तू अपने मन का भेद सहमे आँसुओ, सशक मुस्कान और मधुर लज्जा मे मुझसे कह—एकान्त मे, केवल मुझसे कह !

दो पक्षी

पिंजरे का पक्षी सोने की शलाखो मे बन्द था, वन्य पक्षी वन में।

एक समय भाग्यवश दोनो का मिलन हुआ।

वन्य पक्षी बोला पिंजरे के बन्दी बन्धु, चलो वन मे दोनो एक साथ रहेगे।

पिंजरे के पक्षी ने कहा · वन्य पक्षी, यहाँ आओ, दोनो इस पिंजरे मे साथ रहे।

वन्य पक्षी · न, मै सीखचो मे बन्द नही रह सकता।

पिंजरे का पक्षी बोला · हाय, मै डरावने वन में कैसे रहूँगा ?

वन्य पक्षी बाहर बैठा-बैठा गीत गाता रहा। पिंजरे के पक्षी को उन गीतो का अर्थ समझ न आया, दोनो की भाषा अलग-अलग थी।

वन का पक्षी बोला पिंजरे के बन्द भाई, चलो वन के गीत गायें।

पिंजरे का पक्षी पिंजरे के गीत सीख लो बन्धु !

वन का पक्षी न, मुझे सीखे हुए गीत नही गाने।

पिंजरे का पक्षी हाय, मै वन के गीत कैसे गाऊँ ?

वन का पक्षी आह, मै क्या सिखाऊँ तुम्हे ? सगीत अभ्यास से नही आता।

पिंजरबद्ध पक्षी मेरा दुर्भाग्य, मुझे वन के गीत नही आते।

दो पक्षी

पिंजरे का पक्षी सोने की शलाखो मे बन्द था, वन्य पक्षी वन में।

एक समय भाग्यवश दोनो का मिलन हुआ।

वन्य पक्षी बोला पिंजरे के बन्दी बन्धु, चलो वन मे दोनो एक साथ रहेगे।

पिंजरे के पक्षी ने कहा वन्य पक्षी, यहाँ आओ, दोनो इस पिजरे मे साथ रहे।

वन्य पक्षी न, मै सीखचो मे बन्द नही रह सकता।

पिजरे का पक्षी बोला हाय, मै डरावने वन में कैसे रहूँगा ?

वन्य पक्षी बाहर बैठा-बैठा गीत गाता रहा। पिजरे के पक्षी को उन गीतो का अर्थ समझ न आया, दोनो की भाषा अलग-अलग थी।

वन का पक्षी बोला पिंजरे के बन्द भाई, चलो वन के गीत गायें।

पिंजरे का पक्षी पिंजरे के गीत सीख लो बन्धु !

वन का पक्षी न, मुझे सीखे हुए गीत नही गाने।

पिंजरे का पक्षी हाय, मै वन के गीत कैसे गाऊँ ?

वन का पक्षी आह, मै क्या सिखाऊँ तुम्हे ? सगीत अभ्यास से नही आता।

पिंजरबद्ध पक्षी मेरा दुर्भाग्य, मुझे वन के गीत नही आते।

उनमे अगाध प्रेम था, तब भी दोनों पास न आ सके।

पिंजरे के सीखचों मे से दोनों एक-दूसरे को नीरव स्नेह-भरी दृष्टि से देखते थे और एक-दूसरे का स्पर्श-सुख लेते थे। किन्तु दोनों एक-दूसरे को पूरी तरह पहचान न सके।

दोनो पंख फड़फड़ाकर परस्पर मिलन की आतुरता प्रकट करते और गाते : प्रिय, आओ, मेरे पास आओ !

वन्य पक्षी ने कहा : न भाई, कही पिंजरे के दरवाजे मे बन्द हो गए तो ?

पिंजरे के पक्षी ने कहा : हाय, मेरे पखों मे उड़ने की शक्ति नही।

वन के पक्षी ने कहा : चलो, वन मे उड़ोगे तो इस घने नीले आकाश मे तुम्हें कहीं बाधा न होगी।

पिंजरे के पक्षी ने उत्तर दिया : वहाँ मुझे पिंजरे के सीखचों की तरह चारो ओर से कौन ढकेगा ?

वन का पक्षी बोला : अपने को एक बार उड़ते मेघों में छोड़ दो और देखो कितना आनन्द आता है !

पिंजरे के पक्षी ने कहा : अपने को एक छोटे से पिंजरे मे बाँध रखो और देखो कितना सुख मिलता है !

वन का पक्षी बोला : न भाई, इतने छोटे मे तो मै उड़ भी न पाऊँगा।

पिजरे के पक्षी ने कहा : हाय, मेघो मे बैठने की जगह कहाँ पाऊँगा मै ?
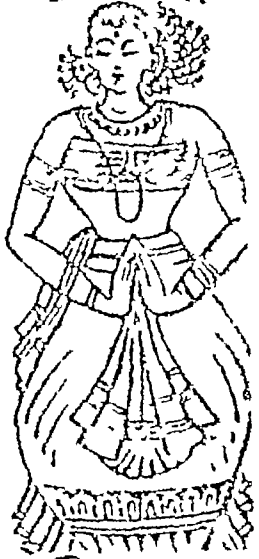
हृदय-भार

"युवक, आओ, सच सच कहो, तुम्हारी आँखो में यह मद क्यो भरा है ?"

"मै नही जानता मैने किन वन-पुष्पो का आसव पिया है जिससे मेरी आँखे मद-भरी हो गई है ।"

"आह, कितनी लज्जा की बात है !"

"ठीक है, कुछ लोग मूर्ख है कुछ पडित, कुछ सावधान है कुछ असावधान, कई आँखे हँसती रहती है और कई आँखो से आँसू झरते रहते है । मेरी आँखो मे मद भरा है ।"

"युवक, तुम वृक्ष की छाया मे ऐसे चुपचाप क्यो खड़े हो ?"

"मेरे पैर मेरे हृदय के भार से थक गए है, इसलिए मै यहाँ वृक्ष की छाया में चुपचाप खडा हूँ ।"

"आह, कितनी लज्जा की बात है !"

"ठीक है, कुछ है जो अपनी राह पर सीधे चलते जाते है, कुछ ठहरकर विश्राम लेते है, कुछ स्वतन्त्र है और कुछ को दूसरो के इशारो पर चलना पडता है । मेरे पैर मेरे हृदय के भार से बोझिल हो गए है, इसलिए मै यहाँ खड़ा हूँ ।"

नम्र याचक

"तेरे दानोत्सुक हाथो से जो कुछ मिलता है, मै ले लेता हूँ। उससे अधिक की मैने कभी अभ्यर्थना नही की।"

"हाँ, हाँ, नम्र याचक, मै जानता हूँ, तू देने वाले से उसका सब कुछ माँग लेता है।"

"उसके पास अगर कोई डाल से टूटा हुआ फूल होगा तो मै उसे हृदय मे सजा लूँगा।"

"और जो काँटा हो ?"

"तो हँसकर उसे सहन करूँगा।"

"हाँ, हाँ, नम्र याचक, मै जानता हूँ, तू देने वाले से उसका सर्वस्व माँग लेता है।"

"किन्तु, यदि तू एक बार भी अपनी प्रेमार्त आँखे उठाकर मेरी ओर दृष्टिपात करे तो मेरा इहलोक-परलोक अलौकिक माधुर्य से भर जाय।"

"और यदि उस दृष्टि मे क्रूर उपेक्ष-विष भरा हो ?

"तब भी मै उस विष से दग्ध अपने हृदय को अनन्त काल तक तड़पने दूँगा।"

"हाँ, हाँ, नम्र याचक, मै जानता हूँ, तू देने वाले से उसका सब-कुछ माँग लेता है।"
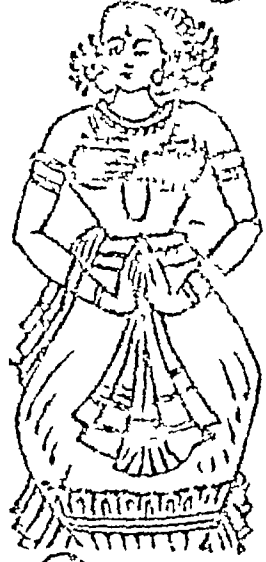
गहन वचन

"प्रेम यदि कष्ट भी दे तो अपने हृदय का द्वार बन्द मत कर।"

"नही मित्र, तेरे वचन बडे गहन है, मेरी बुद्धि मे नही समाते।"

"प्रिय, हमारा हृदय आँसुओ और गीतो के साथ अर्पित होने के लिए ही बना है।"

"नही मित्र, तेरे वचन बडे गहन है, मेरी बुद्धि मे नही समाते।"

"आनन्द ओसकण की तरह नश्वर है—उनकी तरह जो हँसते ही मर जाते है, किन्तु विषाद स्थायी और सबल होता है। अपनी आँखो में विषाद-भरा प्रेम जागृत कर।"

"नही मित्र, तेरे वचन बडे गहन है, मेरी बुद्धि मे नही समाते।"

"कमल सूर्य की आभा मे खिलता है और अपना सब-कुछ खो देता है। अनन्त काल तक वह कालिमा के रहस्य-भरे आवरण मे छिपा नहीं रह सकता।"

"नही मित्र, तेरे वचन बडे गहन है, मेरी बुद्धि मे नही समाते।"
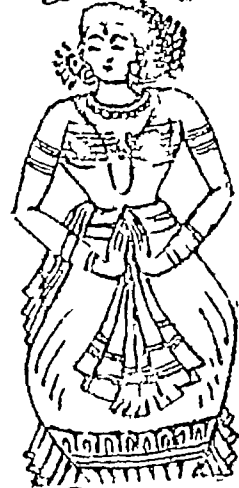
दुर्बोध

तुम मेरी थाह नही पाती सखि !

तुम्हारी प्रशान्त, विषाद-भरी आँखे प्रश्न कर रही है; मेरे रहस्य को पाने का यत्न कर रही है, जैसे नभ मे स्थिर नतमुख चन्द्र समुद्र के हृदय की थाह पाने का यत्न करता है।

मैने अपना कुछ भी नही छिपाया। जो कुछ है सब तेरी आँखो के सामने अनावृत रख दिया; सब कुछ तुझे दे दिया, तो भी तुम मेरी थाह नही पाती क्या ?

यदि यह एक रत्न होता तो मै इसे शत-शत खण्डो मे तोड़कर, एक सूत्र मे पिरोकर, तेरे कण्ठ मे पहना देता।

यदि यह एक सुन्दर छोटा-सा फूल होता तो मै उषा-काल मे बिखरी पखडियो और वसन्त मे झूलती डालियों से चुनकर तेरी शस्य-श्यामल वेणी मे गूँथ देता।

किन्तु सखि, यह तो हृदय है, न इसका ओर-छोर है, न इसकी कोई दिशा है, न अन्त !

इसका कोई आदि-अन्त नहीं जान सकोगी रानी ! यह तो केवल तुम्हारी राजधानी है !

यदि यह केवल आनन्द या एक मुक्त हास्य होता जो आनन्द के लिए खिलता है तो तू एक पल मे हृदय-वार्ता जान लेती और यह न कहती कि इसका रहस्य क्या है।
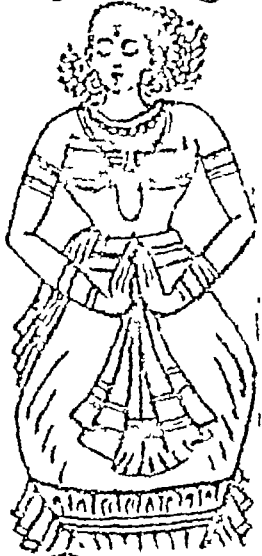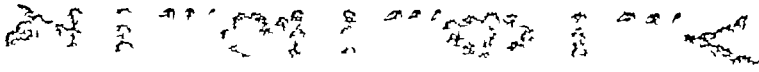
यदि यह केवल एक विषाद होता, दो आँखो मे छल-

छल करते दो बिन्दु होते ता विपन्न म्लान मुख पर प्रत्यक्ष ही अन्तर की व्यथा चित्रित हो जाती।

सखि, यह तो हृदय का प्रेम है!

इसके सुख-दुःख का, वेदना का, न आदि है न अन्त, इसके वैभव और अभावो की भी कोई सीमा नही। दिन-रात नई-नई व्याकुलता जन्म लेती है इसमे, तभी हमें इसकी थाह नही मिलती।

गीतों का अर्थ

बोलो प्रेमी, बोलो, जो गीत तुम गा रहे थे उसका अर्थ मुझे समझा दो।

रात अँधेरी है, तारे बादलो मे छिप गए है, पवन पत्तो मे से उच्छ्वास ले रहा है।

मै अपनी वेणी का बन्धन खोल दूँगी। मेरा नीला आचल ही मुझे रात की काली चादर की तरह लिपटाए रखेगा। तुम्हारे सिर को मै अपने वक्ष से लगा लूँगी, और इस मधुर एकान्त मे तुम्हारे हृदय से बाते करूँगी। मै अपनी आँखे बन्द कर लूँगी और केवल सुनूँगी, तुम्हारी ओर देखने को भी मै आँखे नही खोलूँगी।

जब तुम सब कह चुकोगे, हम चुपचाप बैठे रहेगे। केवल वृक्षो की डालियाँ ही आपस मे बाते करेगी।

जब रात का अँधेरा पीला पड जायगा, दिन का धुँधला प्रकाश छा जायगा। हम मुख उठाकर एक-दूसरे की आँखो मे देखेगे और अलग-अलग रास्तो पर चल पडेगे।

बोलो प्रेमी, बोलो, अपने गीतो का अर्थ मुझे समझा दो।

मानस-प्रतिमा

तू मेरा शान्त, सुदूर, शून्य गगनविहारी, सान्ध्यकालीन मेघ है।

मै मन के अमित माधुर्य का सचय कर अपनी स्वप्न-तूलिका से तुझे चित्रित करता हूँ।

तू मेरा है, ओ मेरे असीम गगनविहारी, तू मेरा है !

मै अपने हृदय-रक्त से तेरे चरण रजित करता हूँ। हे मेरे सन्ध्या-स्वप्नविहारी, तू मेरा है !

अपने खडित सुख-दु ख के विष-अमृत मिले रगो से मै तेरे अधर अकित करता हूँ।

तू मेरा है, ओ मेरे विजन जीवनविहारी, तू मेरा है !

मैने अपने मोह के स्वप्नो से निर्मित अजन तेरे नेत्रो मे भर दिया है, ओ मेरे मूक नयनविहारी !

मेरा सगीत तेरे अग-अग में समा गया है। तू मेरा है, तू मेरा है, हे मेरे जीवन-मरणविहारी, तू मेरा है !

हृदय-आकाश

मेरे मन नील-गगनविहारी विहगम ने तेरे नयन-सलिल मे नया नीलाम्वर देख लिया है ।

तेरे नैनों की कोर मे न जाने कौनसा अलौकिक रहस्य निहित है ! तेरे हँसने पर जब नैन पलक खुलते है तो उनमें उषा का आलोक भर जाता है ।

हृदय उस नवनीलाम्वर में एकाकी उड़ने को आतुर हो जाता है और उस नील नेत्रों के देश मे जाकर वही रमण करने को अधीर हो उठता है। उस अतल गगन सागर की गहराई मे डूबकर मेरे गीतो के उच्छ्वास लुप्त हो जाते है ।

तेरा नीलाम्बर असीम है, विजन है, उसकी निर्मल नीलिमा के शून्य मे मै अपने कनकवर्ण पखों से उड़ता ही जाऊँ, यही कामना है ।

मेरा तृषित हृदय-चातक एक अश्रु-विन्दु के लिए आतुर है और मेरा हृदय-चकोर चाँद की एक हास्य-किरण के लिए अधीर है ।

मानस-प्रतिमा

तू मेरा शान्त, सुदूर, शून्य गगनविहारी, सान्ध्यकालीन मेघ है।

मैं मन के अमित माधुर्य का सचय कर अपनी स्वप्न-तूलिका से तुझे चित्रित करता हूँ।

तू मेरा है, ओ मेरे असीम गगनविहारी, तू मेरा है!

मैं अपने हृदय-रक्त से तेरे चरण रजित करता हूँ। हे मेरे सन्ध्या-स्वप्नविहारी, तू मेरा है!

अपने खडित सुख-दुख के विष-अमृत मिले रगो से मैं तेरे अधर अकित करता हूँ।

तू मेरा है, ओ मेरे विजन जीवनविहारी, तू मेरा है!

मैंने अपने मोह के स्वप्नो से निर्मित अजन तेरे नेत्रो मे भर दिया है, ओ मेरे मूक नयनविहारी!

मेरा सगीत तेरे अग-अग मे समा गया है। तू मेरा है, तू मेरा है, हे मेरे जीवन-मरणविहारी, तू मेरा है!

हृदय-आकाश

मेरे मन नील-गगनविहारी विहंगम ने तेरे नयन-सलिल मे नया नीलाम्बर देख लिया है।

तेरे नैनों की कोर मे न जाने कौनसा अलौकिक रहस्य निहित है! तेरे हँसने पर जब नैन पलक खुलते है तो उनमें उषा का आलोक भर जाता है।

हृदय उस नवनीलाम्बर मे एकाकी उड़ने को आतुर हो जाता है और उस नील नेत्रों के देश में जाकर वहीं रमण करने को अधीर हो उठता है। उस अतल गगन सागर की गहराई मे डूबकर मेरे गीतों के उच्छ्वास लुप्त हो जाते हैं।

तेरा नीलाम्बर असीम है, विजन है, उसकी निर्मल नीलिमा के शून्य मे मै अपने कनकवर्ण पखों से उड़ता ही जाऊँ, यही कामना है।

मेरा तृषित हृदय-चातक एक अश्रु-विन्दु के लिए आतुर है और मेरा हृदय-चकोर चाँद की एक हास्य-किरण के लिए अधीर है।

मानस-प्रतिमा

तू मेरा शान्त, सुदूर, शून्य गगनविहारी, सान्ध्यकालीन मेघ है।

मैं मन के अमित माधुर्य का सचय कर अपनी स्वप्न-तूलिका से तुझे चित्रित करता हूँ।

तू मेरा है, ओ मेरे असीम गगनविहारी, तू मेरा है !

मैं अपने हृदय-रक्त से तेरे चरण रजित करता हूँ। हे मेरे सन्ध्या-स्वप्नविहारी, तू मेरा है !

अपने खडित सुख-दु ख के विष-अमृत मिले रगो से मैं तेरे अधर अकित करता हूँ।

तू मेरा है, ओ मेरे विजन जीवनविहारी, तू मेरा है !

मैंने अपने मोह के स्वप्नो से निर्मित अजन तेरे नेत्रो मे भर दिया है, ओ मेरे मूक नयनविहारी !

मेरा सगीत तेरे अग-अग मे समा गया है। तू मेरा है, तू मेरा है, हे मेरे जीवन-मरणविहारी, तू मेरा है !

हृदय-आकाश

मेरे मन नील-गगनविहारी विहगम ने तेरे नयन-सलिल मे नया नीलाम्बर देख लिया है।

तेरे नैनो की कोर मे न जाने कौनसा अलौकिक रहस्य निहित है ! तेरे हँसने पर जब नैन पलक खुलते हैं तो उनमे उषा का आलोक भर जाता है।

हृदय उस नवनीलाम्वर में एकाकी उड़ने को आतुर हो जाता है और उस नील नेत्रों के देश मे जाकर वही रमण करने को अधीर हो उठता है। उस अतल गगन सागर की गहराई मे डूबकर मेरे गीतों के उच्छ्वास लुप्त हो जाते है।

तेरा नीलाम्बर असीम है, विजन है, उसकी निर्मल नीलिमा के शून्य मे मै अपने कनकवर्ण पंखो से उड़ता ही जाऊँ, यही कामना है।

मेरा तृषित हृदय-चातक एक अश्रु-बिन्दु के लिए आतुर है और मेरा हृदय-चकोर चाँद की एक हास्य-किरण के लिए अधीर है।

मानस-प्रतिमा

तू मेरा शान्त, सुदूर, शून्य गगनविहारी, सान्ध्यकालीन मेघ है।

मै मन के अमित माधुर्य का सचय कर अपनी स्वप्न-तूलिका से तुझे चित्रित करता हूँ।

तू मेरा है, ओ मेरे असीम गगनविहारी, तू मेरा है!

मै अपने हृदय-रक्त से तेरे चरण रजित करता हूँ। हे मेरे सन्ध्या-स्वप्नविहारी, तू मेरा है!

अपने खडित सुख-दुख के विष-अमृत मिले रगो से मै तेरे अधर अकित करता हूँ।

तू मेरा है, ओ मेरे विजन जीवनविहारी, तू मेरा है!

मैने अपने मोह के स्वप्नो से निर्मित अजन तेरे नेत्रो मे भर दिया है, ओ मेरे मूक नयनविहारी!

मेरा सगीत तेरे अग-अग में समा गया है। तू मेरा है, तू मेरा है, हे मेरे जीवन-मरणविहारी, तू मेरा है!

हृदय-आकाश

मेरे मन नील-गगनविहारी विहंगम ने तेरे नयन-सलिल मे नया नीलाम्बर देख लिया है।

तेरे नैनों की कोर मे न जाने कौनसा अलौकिक रहस्य निहित है ! तेरे हँसने पर जब नैन पलक खुलते है तो उनमें उषा का आलोक भर जाता है।

हृदय उस नवनीलाम्बर मे एकाकी उड़ने को आतुर हो जाता है और उस नील नेत्रों के देश में जाकर वही रमण करने को अधीर हो उठता है। उस अतल गगन सागर की गहराई मे डूबकर मेरे गीतो के उच्छ्वास लुप्त हो जाते है।

तेरा नीलाम्बर असीम है, विजन है, उसकी निर्मल नीलिमा के शून्य मे मै अपने कनकवर्ण पखों से उड़ता ही जाऊँ, यही कामना है।

मेरा तृषित हृदय-चातक एक अश्रु-बिन्दु के लिए आतुर है और मेरा हृदय-चकोर चाँद की एक हास्य-किरण के लिए अधीर है।

कस्तूरी-मृग

अपनी ही गन्ध मे पागल कस्तूरी-मृग-समान मैं भी पागल हुआ वन-वनान्तरो मे भटक रहा हूँ।

फागुन की मध्य-रात्रि है, दक्षिण पवन बह रहा है, दिशा का ज्ञान भी नही रहा।

जो नही चाहिए वही मै चाह रहा हूँ और जो पा लेता हूँ उससे विरत हो जाता हूँ।

अन्त करण से बाहर आकर मेरी ही वासनाएँ मृग-मरीचिका-सम झिलमिलाती है, और जब भुजाएँ फैला उन्हे वक्ष में समेटने का यत्न करता हूँ तो ओझल हो जाती है।

जो नही चाहिए वही मै चाह रहा हूँ और जो पा लेता हूँ उससे विरत हो जाता हूँ।

अपने रागो को उन्मत्त पागल-सा मै अपनी वशी के स्वरो मे बाँधने का यत्न कर रहा हूँ। किन्तु जो स्वरो मे बँध गया है उसमें राग नही रहा, बहुत खोजने पर भी नही मिलता।

जो नही चाहिए वही मै चाह रहा हूँ और जो पा लेता हूँ उसके प्रति मन मे विरक्ति भर जाती है।

प्रणय-प्रश्न

क्या यह सब सत्य है, हे मेरे चिर प्रेमी, क्या यह सब सत्य है ?

मेरी आँखों के उज्ज्वल आलोक के स्पर्श से तेरे हृदय-मेघ झनझना उठते है; क्या यह सत्य है ?

मेरे ओष्ठ नववधू की प्रथम लज्जा के समान आरक्त है, क्या यह सत्य है, हे मेरे चिर प्रेमी, क्या यह सत्य है ?

मेरे अग-अग मे चिर मन्दार फूट उठा है और मेरे पदचाप से विश्व-वीणा के स्वर झकृत हो जाते है, क्या यह सत्य है ?

क्या यह भी सच है कि निशा-सुन्दरी के अश्रु मेरे हित ही झरते है और प्रभात का आलोक मेरे आलिगन से ही पुलकित होता है ?

और, क्या यह भी सच है कि मेरे सतप्त कपोल का स्पर्श ही पवन को मदिरमत्त बना देता है ?

प्रकाश का देवता सूर्य मेरे कृष्ण केश-पाश मे तिरोहित हो जाता है और मरण मुझे दोनो भुजाओ मे बाँध लेता है; क्या यह भी सत्य है ?

मेरे आंचल मे विश्व का विराट् जीवन सिमटकर समा गया है और नि.स्वर विश्व मेरे ही कण्ठ मे स्वर की चरम सीमा पा रहा है: क्या यह भी सत्य है ?

सम्पूर्ण त्रिभुवन की अर्पण-भावना का केन्द्र मै ही हूँ, हे मेरे अनुरक्त, क्या यह सत्य है ?

मेरा प्रणय युग-युग से तुझे लोक-लोकान्तर का परिभ्रमण करा रहा है और अन्त मे मेरी वाणी मे, नयन मे, अधरो और अलको मे आकर तुझे एक निमिष मे जन्म-जन्मान्तर की विश्रान्ति मिल जाती है, यह भी सत्य है क्या ?

मेरे सुकुमार ललाट-पट पर असीम अनन्त का रहस्य लिखा हुआ है, हे मेरे चिर प्रेमी, क्या यह सत्य है ?
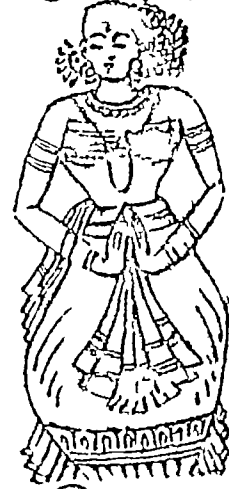
मार्जना

प्रियतम, मै तुम्हारा प्रेम-भिखारी हूँ, मुझे क्षमा करो, मेरी विवशता का विस्मरण कर दो।

पथ-भूले भीरु पक्षी के समान मै पिजर-बद्ध हो गया हूँ। तथापि हे प्रियतम, द्वार बन्द न करो, न करो।

मेरा सब सचित धन नि:शेष हो गया। अपना आवरण भी न सँभाल सका मेरा विक्षिप्त हृदय; तुम्ही अब उसकी नग्नता को ढको। करुणा करो प्रिय, मै अबला हूँ, मेरी लाज रखो प्रियतम !

यदि तुम मुझे प्रेम के योग्य नही समझते तो भी मुझे क्षमा करो।

व्यंग-भरी आँखों से देखते हुए मेरा उपहास न करो।

मै चकित भयभीत-सा अपने एकाकी कक्ष मे लौट जाऊँगा और भवन की अन्धकारपूर्ण भित्तियों मे अपने को छिपा रखूँगा। अपने दोनों हाथो से मै अपनी नग्न हृदय-वेदना को ढक लूँगा।

मेरी ओर से अपनी कटाक्ष-भरी दृष्टि हटा लो, प्रिय, मुझ दैवाहत को क्षमा करो।

प्रियतम ! यदि तुम मुझसे प्रेम करते हो तो मेरे उल्लास के लिए मुझे क्षमा कर दो।

जब मेरा हृदय सोहाग के स्रोत में निर्बाध बह निकले तो तुम दूर बैठकर मेरा उपहास न करना।

जब मै अपने को रानी मान रत्नासन पर बैठूँ और
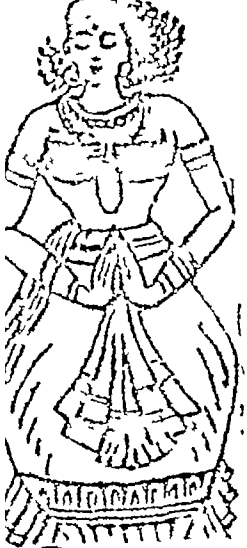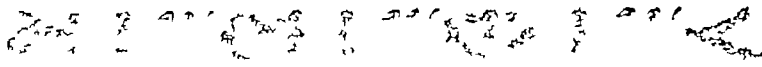
तुम्हे प्रगाढ प्रणय-सूत्र मे बांधना चाहूँ या प्रेम-प्रताडिता रमणी की भाँति तुम्हारी तृषा शान्त करूँ, तब भी हे नाथ, मेरे गर्व की रक्षा करना और मेरे उत्सुकता-भरे पुलक प्रदर्शन के लिए मुझे क्षमा करना।

अनुरोध

प्रिये, कही मेरी अवहेलना कर अचानक मेरा परित्याग न कर जाना !

सारी रात मै तुझे अपलक देखता रहा हूँ ; अब मेरी आँखे निद्रा-भार से बोझिल हो रही है।

मुझे भय है, जब मै गहरी निद्रा मे अपने को खो दूँगा तब तू भी मेरा कक्ष छोड दूर चली जायगी ।

प्रिये, विनती करता हूँ, मुझसे पूछे बिना मत चले जाना।

मै चौककर उठ बैठता हूँ और तुझे स्पर्श करने को हाथ बढाता हूँ। उस समय मन मे कम्प उठता है, 'कही यह सब स्वप्न तो नही ?'

अपने हृदय-रज्जु से तेरे चरण बाँधकर वक्ष से लगा लूँ, तभी मुझे शान्ति मिलेगी ।

प्रिये, मुझसे पूछे बिना मत चले जाना ।
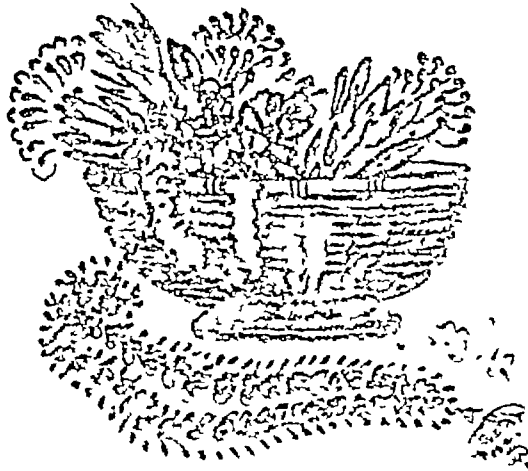
कौशल

तुझे सहज मे पहचान न लूँ, तभी तू यह छल-लीला कर रहा है प्रिय ! बाहर तेरी हास्य-छटा खिल रही है और भीतर चक्षुकोर मे अश्रु भरे है ।

जान गया मै तेरा यह छल, जान गया !

जो बात तेरे मन मे छिपी है, जो व्यक्त करना चाहता है, वही तेरे होठो पर नही आती ।

कही मै तुझे स्पर्श न कर लूँ, तुझे पा न लूँ, इसलिए भी तूने अपना ओर-छोर न रखा ; तू स्वयं रूप-स्पर्शातीत रहा ।

सब पक्ष तुझे अपने निकट लाने की चेष्टा करते है, इसीलिए तू सबसे विरक्त, विरूप और विमुख हो जाता है ।

जानता हूँ, मै तेरा यह छल खूब जानता हूँ !

जिस पथ पर तू चलना चाहता है उस पर तू नही चलता ।

सभी तुझे अपना इष्ट मानते है ; तभी तू सबसे विमुख हो जाता है और खेल-खेल मे प्रार्थी के भिक्षा-पात्र को दूर फेक देता है ।

जानता हूँ, तेरा यह छल खूब जानता हूँ !
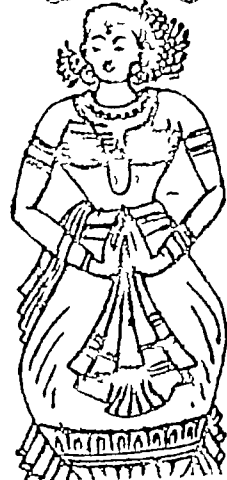
भर्त्सना

उसने धीमे से कहा : "प्रिये, मुखड़ा तो ऊपर उठाओ !"

रूठकर तूने जवाब दिया . "जाओ जी सखि ! जाओ, सताओ नही ।" तभी तो वह गया नही ।

सम्मुख खड़े होकर उसने कहा : "हटो ।" तब उसने दोनों हाथ बाँध लिये और खड़ा रहा ।

सखि ! ओ सखि ! तभी तो उसने तेरे हाथ नही छोड़े ।

अपने मुख को कानों के बहुत निकट लाकर मैंने उसकी ओर अर्थ-भरी दृष्टि से देखते हुए कहा : "छि. छिः, कितने निर्लज्ज हो !" सखि ! ओ सखि ! शपथ से कहता हूँ तभी तो उसने हाथ नही छोड़े, वह पास से नहीं हटा ।

तब उसके अधर और कपोल मुझे स्पर्श कर गए । काँपकर मै कह उठा : "तुम-सा कोई नही देखा । तुम बहुत धृष्ट हो ।" सखि ! ओ सखि ! तभी तो उसने अपना मुख नहीं फिराया ।

उसने अपनी माला मुझे पहना दी । मैंने कहा : "माला का क्या प्रयोजन ?" सखि ! ओ सखि ! उसे न लज्जा आई, न वह डरा ही । उसके सब अनुनय-विनय झूठे थे ।

उसने गले से पुष्पहार लिया और चला गया । मै उसे पाने को अवाक् खड़ा रहा । सखि ! ओ सखि ! मै हृदय पर हाथ रखकर पूछता हूँ, क्या वह लौटकर न आएगा ?

उत्सृष्ट

तूने यह सुवासित पुष्पमाला व्यर्थ ही गूँथी और व्यर्थ ही मेरे कण्ठ मे पहनाई।

हे निर्मल! तेरी भावना का मै आदर करता हूँ; किन्तु, इतना जान लो कि यह माला मेरे अकेले के लिए नही बहुतो के लिए है। यह उनके लिए भी है जो अज्ञात प्रदेशो मे रहते है, जिनके मुख घूँघट मे छिपे रहते है, जिन्हे कोई पहचानता नही। एव अतीतकाल के उन वीरो के लिए भी है जो अमर हो चुके है। उनका परिचय केवल कवि के गीतो में मिलता है।

हृदय के मूल्य में आज क्या कोई हृदय देगा? वह समय बीत गया!

वह तरुण समय था जब मेरा जीवन अनखिले पुष्प समान था; उसकी सुवास, उसकी शोभा, उसका मधु मेरे वक्ष मे बन्दी समान बन्द थे। आज वह अनेक देशो, अनेक वेषो और अनेक स्वरो में दूर-दूर बिखर गया है।

उसे फिर सचित करने और समेटकर उसी तरह बन्द करने का मोहन-मन्त्र कौन जानता है?

अपना हृदय अब केवल तुझ एक को भेंट देने की आशा नही रही। यह अब चारो दिशाओ में बहुतो को अर्पित हो चुका।

क्षति-पूर्ति

प्रिये, एक समय तेरे कवि ने अपने मन मे महान् वीर-रस-भरे काव्य की रचना की थी।

शोक, मै असावधान रहा, वह तेरी झनझनाती झाँझर से छू गया और एक दु:खद घटना हो गई।

वह टूटकर गीतों के खण्डो मे बिखर गया और तेरे चरणों में जा पड़ा।

मेरे पुरातन युद्धो की कहानी का ऐतिहासिक काव्य-कोष हास्य की लहरो पर वहता रहा और अन्त मे आँसुओं से भरकर डूब गया।

प्रिये, मेरी इस महती क्षति की पूर्ति तुम्हे करनी होगी।

मृत्यु के बाद अमर-कीर्ति पाने का मेरा अधिकार नष्ट हो गया; अब मुझे जीवन मे ही अमरता देना तुम्हारे हाथ है।

मै अपनी क्षति पर शोक नही करूँगा और न तुम्हें दोष दूँगा।

किसका दोष

जितनी ही बार आज मै पुष्पहार पिरोने का यत्न करता हूँ, पुष्प बिखर जाते है। जाने यह किसका दोष है ?

तू वहाँ बैठी-बैठी आँखो की कोर से यह सब चुपचाप देख रही है।

तेरी आँखो की लाज, प्रिय ! मेरी अगुलियाँ अधीर हो जाती है। यह किसका दृष्टि-दोष है ?

आज मै जिस गीत को स्वरबद्ध करने की योजना बनाता हूँ, शब्द ही नही जुडते, स्वर ही नही निकलता।

तब तेरे अरुण-वर्ण ओष्ठो पर हास्य खेल जाता है। मेरे यत्न की इस व्यर्थता का क्या कारण है ? क्यो मेरा कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है और शब्द नही जुडते, यह अपनी आँखो से पूछ।

तेरे ओष्ठ सौगन्धपूर्वक बता देगे कि मेरी आवाज़ कमल फूल का रसपान करने के बाद मदमाती मक्खी की आवाज की तरह बन्द क्यो हो जाती है।

सध्या हो गई। मैने माला और वीणा रख दी। अब अपने दास को छुट्टी दो। सब कथा बन्दकर अब तेरे चरणो में बैठूँगा। नीरव ओष्ठो से जो काज बन पाएगा प्रिय, अब वही काज करने की अनुमति दो अपने अकर्मण्य दास को।

विदाई

जब भी मै तेरे पास विदाई लेने आता हूँ तेरी आँखों में 'असम्भव' ध्वनि के साथ एक व्यंग-भरी मुस्कान छा जाती है।

विदा होने की बात मैंने इतनी बार दोहराई है कि तुझे मेरी विदाई का विश्वास उठ गया है। तुझे भरोसा है कि मै विदा होकर अवश्य वापस आऊँगा।

सच तो यह है कि मेरा मन भी यही साक्षी दे रहा है।

कारण, कि वसन्त के मधुमय क्षण प्रतिवर्ष विदा होकर फिर-फिर वापस आते है, पूनो का चाँद प्रतिमास विदा होकर पुन लौट आता है, फूल अपनी शाखो से विदा होकर प्रतिवर्ष नई आभा के साथ लौट आते है। इसलिए सम्भव है, मै भी केवल फिर वापस आने के लिए ही तुझसे विदाई लेने आया हूँ। फिर भी एक प्रार्थना है। इस भ्रम को कुछ देर तो बनाये रख और मुझे इतनी सरलता से विदा होने की अनुमति न दे।

जब मै कहूँ 'तुमसे सदा के लिए विदाई लेने आया हूँ,' मेरी बात को कुछ क्षण अवश्य सच मान लेना और एक क्षण के लिए अपनी काजल-भरी आँखों के कोर मे आँसुओ को घटा छाने देना।

उसके बाद जब मै वापस आऊँ तो मनोवाछित शरारत से मुस्करा लेना।

भीरुता

मै गौरवगरिमा-भरे स्वरो मे, तुझे अपनी गहन-गम्भीर अर्थ-भरी कथा कहना चाहता हूँ, किन्तु इस भय से नही कहता कि कही तू मन-ही-मन मुझ पर न हँसे।

इसी हेतु मै अपने पर स्वय हँस लेता हूँ और अपनी बात को हँसी मे टाल देता हूँ।

मै जानता हूँ मेरी बात को तू उपहास मे उडा देगा, इसीलिए स्वय उसे हलका कर तेरा कार्य सुगम कर देता हूँ।

मै मन का गहनतम सत्य तेरे सामने सरल भाव से प्रकट करना चाहता हूँ, किन्तु साहस नही होता, इस भय से कि तू विश्वास न करेगा।

इसीलिए मै अपनी व्यथा को मिथ्या छल मे छिपा लेता हूँ और अपने अभिप्रेत लक्ष्य से सर्वथा विपरीत कह देता हूँ, तुझे अपनी प्राण-कथा सुनाने का साहस भी मै बटोर नही पाता।

अपनी व्यथा को मै स्वय प्रत्यक्ष में उपहास का विषय बना लेता हूँ, इस डर से कि कही तू परोक्ष मे उसका उपहास न करे।

मै तेरे स्तवन हेतु गौरवगरिष्ठ शब्दो का प्रयोग करना चाहता हूँ, किन्तु साहस नही होता, इस डर से कि तू भी वैसा ही न करे।

इसीलिए मै तुझे कठोर नामो से बुलाता हूँ और अपनी क्रूरता पर अभिमान करने का अभिनय करता हूँ।

मै तुझे कष्ट पहुँचाता हूँ, इस भय से कि कही तू स्वय

दुःख का प्रयोग प्रारम्भ न कर दे ।

मै तेरे समीप मौन बैठकर युग-युग बिता देना चाहता हूँ, किन्तु साहस नही होता; सोचता हूँ कही मेरा हृदय कंठ तक न आ जाय और तुझे अपनी कथाएँ सुनाने लगे ।

इसीलिए मै व्यर्थ के प्रलाप मे व्यग्र रहने का अभिनय करता हूँ और शब्दो के आवरण मे मन का भेद छिपाए रखता हूँ ।

मै अपनी व्यथा से बडी उपेक्षा का व्यवहार करता हूँ, इस भय से कि परोक्ष मे तू भी उपेक्षापूर्ण व्यवहार करेगा ।

इच्छा होती है मै तुझसे बहुत दूर चला जाऊँ, पास न रहूँ, किन्तु साहस नही होता । सोचता हूँ यह भीरुता तुझ पर प्रकट हो जायगी । इसीलिए तो मै पास बैठा रहता हूँ—मन की व्यथा छिपाकर केवल बैठा रहता हूँ ।

और इसीलिए अपनी व्यथा को जागृत रखने के लिए नित्य तेरे नेत्रो की ज्वाला जलाए रखता हूँ ।

तापस
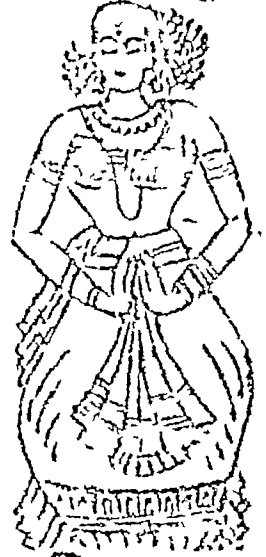
नही मित्र, तुम जो जी मे आये कह लो, मै तपस्वी नही बनूँगा, नही बनूँगा ।

मै तपस्वी नही बनूँगा, निश्चय ही नही बनूँगा, यदि मुझे तपस्विनी का सयोग प्राप्त न होगा ।

यह मेरा कठिन प्रण है कि यदि वकुल-वन न मिले, मन का मीत न मिले और यदि वह तपस्विनी न मिले तो मै तपस्वी का वेश धारण न करूँगा ।

नही मित्र, मै कदापि वैरागी नही बनूँगा, यदि उस तप का बल मेरे हृदय-तल में कोई नया ससार न बसा सकेगा, वाद्य पर नये स्वर न जगा सकेगा और ससार-रूपी बन्दीगृह के द्वार तोडकर मुक्त प्रेम का प्रवाह न बहा सकेगा ।

नही मित्र, मै तापस नही बनूँगा, नही बनूँगा यदि मुझे तपस्विनी न मिलेगी ।
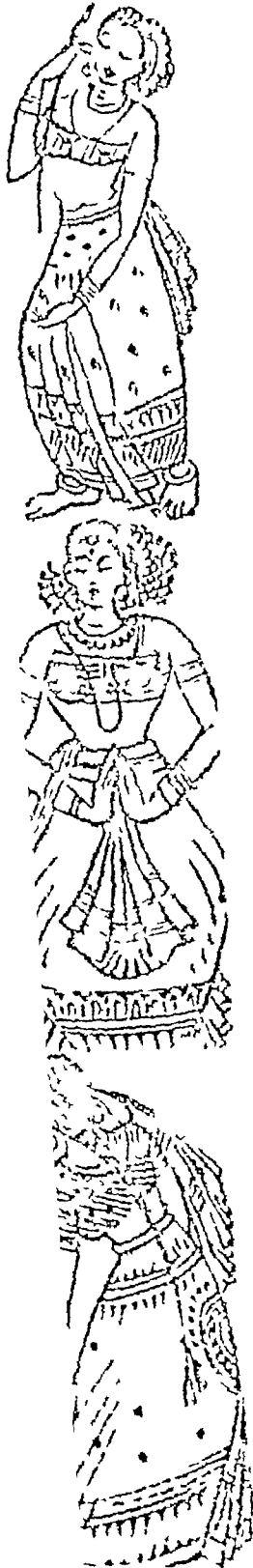
लोक-लाज

ए पागल !

यदि तू अपना ही गृह-द्वार अपने पदाघात से निरावृत कर दे और मार्ग के तस्करो के साथ मित्रवत् आचरण शुरू कर दे, यदि तू रात्रि मे अकारण ही अपना धन-कोष स्वयं ही जनपथ पर फेंक दे, विवेक को तिलांजलि दे दे, यदि तू जाने-अनजाने रास्तों पर भटकने लगे और निरुद्देश्य समय-यापन करे, यदि तुझे श्रेय-प्रेय का भेद न रहे, यदि तू आँधी में अपनी नौका के प्रवाहक पाल काटकर पतवार के खण्ड-खण्ड कर दे तो भी, ए साथी! मै तेरा साथ दूँगा, तेरे साथ सतत मधुपान का व्यवहार रखूँगा और लोकापवाद की अवहेलना करके भी पाताल-लोक तक तेरा साथ निभाऊँगा।

मैंने तत्त्वज्ञानियों के सग सहस्रो दिनों का समय नष्ट किया है, अतिशय विवेक से मेरे मस्तक के द्वार बन्द हो गए है; अतिशय तत्त्व-वर्णन ने मेरी दृष्टि को क्षीण कर दिया है। न जाने कितने वर्षो तक इसी भाँति मै केवल निरर्थक वस्तुओं का सचय ही करता रहा हूँ !

अब मैंने नवीन सकल्प से उस सचित भार की गठरी फेंक दी है। उस पुरातन ज्ञान-सचय को मैंने हवा के झोंको मे वहा दिया है। कारण, अब मै जान गया हूँ कि इन लोक-बन्धनो से मुक्त होकर पागल बनने मे ही सुख है।

तू मेरे मन की सब कुटिल दुविधाएँ नष्ट कर दे और मुझे अच्छी तरह पथ-भ्रष्ट होकर भटकने दे। प्रबल मूर्च्छना

के झोके आने दे और मुझे धन-जनहीन होकर लोक-सग्रह की नौका के सब लगर तोड मँझधार मे खेलने दे ।

यह ससार अतिशय योग्य, कुशल और कर्मठो से पटा पडा है। कुछ जन है जो सबके अग्रणी है, कुछ है जो ज्ञानियो के सग रहते है, उन सबको सुखी-समृद्ध होने दे। मुझे मूर्ख और निरुपयोगी बनने मे ही सन्तोष है। पागल बनकर उन्मुक्त पथ का पन्थी बनने मे ही मुझे सुख मिलता है।

आज से मै प्रण करता हूँ, अपनी समग्र शिक्षा, दीक्षा, अभिज्ञता को त्याग दूँगा, आज से लोक-प्रतिष्ठा और यशस्विता की मिथ्या उपाधियो का परिहार कर दूँगा, समाज के प्रतिष्ठित वर्ग मे आज से मेरा कोई अधिकार नही, तत्त्व-ज्ञानी और सत्यासत्य समीक्षक होने के दर्प को तिलाजलि दे दूँगा। आज मै अपनी आँखे अश्रुजल से रिक्त कर दूँगा और पुरानी स्मृतियो का घट खाली कर दूँगा।

आज मै इन्द्रधनुषी रगो से अपने हास्य को आरक्त बनाऊँगा।

आज मै मदोन्मत्त हो कुलीनता-शालीनता की सब शृखलाओ को तोडकर खण्ड-खण्ड कर दूँगा और बन्धनो से विपरीत दिशा में चलने का प्रण लूँगा।

प्रेमपथ

पूज्यवर, इस पातकी युगल को क्षमा करना ।

वासन्ती पवन आज वन के कुञ्ज-निकुजो मे नयी सिहरन पैदा करती बह रही है । वही पवन अपने झोको में पृथ्वी पर गिरे पुराने पत्तो को बहाये लिए जा रही है । आपकी पुरानी शिक्षाएँ भी उसके प्रवाह मे वही जा रही है ।

ऐसा न कहो पूज्य, कि जीवन मिथ्या है । कारण कि हमने मृत्यु के साथ मैत्री की है और केवल कुछ क्षण के लिए ही हम दोनों को अमरता का दान मिला है ।

इन क्षणो मे यदि राजा की सेना भी आ जाय, हम पर टूट पड़े, तो भी हम सिर हिलाकर उससे सखेद यही निवेदन करेंगे, 'सैनिक गण ! यदि आपको यह कोलाहल करना ही है तो अपनी रण-चातुरी किसी अन्य स्थान पर दिखलाओ, क्योकि हमे कुछ थोडे से नश्वर क्षणो के लिए ही अमरता मिली है, इन क्षणो में व्यवधान न डालो ।'

इन क्षणो मे यदि हमारे मित्र एव बन्धु-बान्धव भी आकर हमे घेर लेंगे तो हम उनसे भी नतमस्तक यही आवेदन करेगे, 'बन्धुगण, आप हमे व्यर्थ कष्ट दे रहे है, जिस अनन्त आकाश मे हम दोनो का निवास बना है वहाँ आपके लिए स्थान नही है । कारण, बसन्त की ऋतु मे यहाँ जब फूल आते है तो अनगिन समूहो मे आते है और मधुलोभी मधु-मक्खियों के पंख भी आपस मे टकराते रहते है । हमारा यह छोटा सा स्वर्ग, जहाँ केवल हम दो अमर आत्माओं का वास है, बहुत ही छोटा है, बहुत ही संकीर्ण है ।'
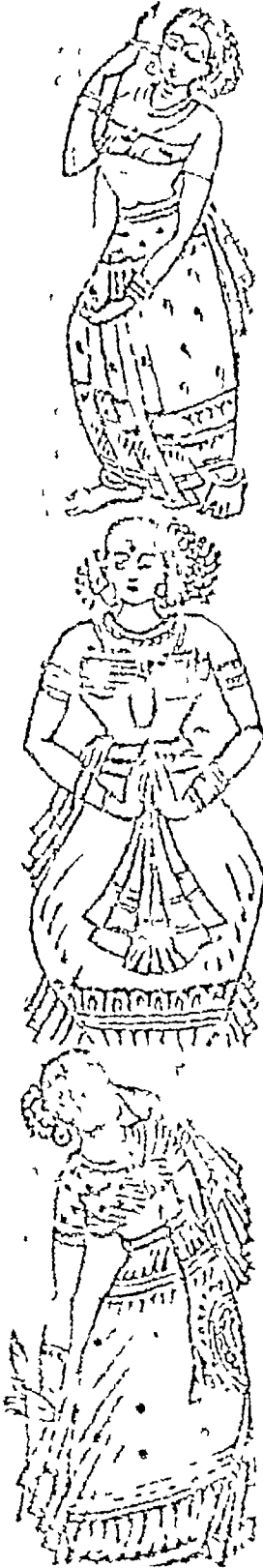
अश्रुकण

जो अतिथि प्रयाण करने वाले है, चले जायँ, भगवान् उनकी गति मे वेग दे। उनके प्रस्थान मे बाधा न डालो, उनके पद-चिन्ह भी स्मृति-पटल से मिटा दो।

अपने हृदय मे उन्हे ही स्थान दो और मुस्कराकर उनसे ही आत्मीयता स्थिर करो जो निकट के, सरल और सीधे है।

आज उन जीवो का उत्सव है जिन्हे यह भी ज्ञान नही कि किस क्षण उनकी मृत्यु आने वाली है।

अपने हास्य को अर्थहीन आनन्द से उजला करो, जैसे पानी की तरल तरगो पर प्रकाश झिलमिलाता है।

अपने जीवन को महाकाल के मच पर ऐसे ही स्थिर करने दो जैसे हरित पल्लव के अग्रभाग पर अश्रुकण नृत्य करते है।

अपनी वीणा के तारो पर ऐसे राग बजाओ जिनका स्वर परिवर्तनशील लय-ताल से बँधा हो।

परिवर्तन

तुम मुझे छोडकर अपने मार्ग पर चले गए ।

मैंने सोचा, मैं तुम्हारे वियोग पर अश्रु वहाऊँ और हृदय के एकान्त कक्ष मे अपने गीतो के स्वर्णिम तारो से तुम्हारी मूर्ति निर्मित करूँ । किन्तु, ओह मेरे दुर्भाग्य, समय कितना अल्प है !

यौवन वर्प-प्रतिवर्ष क्षीण हो रहा है, वसन्त के पहर ढलते जा रहे है, फूलो की आयु सन्ध्या के साथ समाप्त हो जाती है, विवेकशील मनुष्य मुझे भी सावधान कर रहे है कि तेरा जीवन कमलपत्र पर ओसकण के समान है ।

अब भी क्या यह सम्भव है कि मै इन पुकारों पर कान न देकर निर्मोही पथिक को अपलक देखती रहूँ ?

आओ, बरसात की रात्रियो, अपने कोलाहलशील पराघातो के साथ आओ । मेरे शरद सुनहरी कणो मे हास्य की रेखा चमक जाय, मेरा वन्धयुक्त वसन्त चारो ओर अपना चुम्बन बिखेरता जाय ।

मेरे प्रियजन ! तुम जानते हो, हम सब नश्वर है । एक ही प्रवासी पथिक की प्रतीक्षा मे आजीवन अश्रुपात अच्छा नही । आयु की घड़ियाँ बहुत छोटी है ।

एकान्त मे बैठकर वियोग-भरे गीतों का गुंजन करना और करुणा-भरे गीत के स्वर वाँधना भी माधुर्य से रिक्त नही ।

अपने दु:ख को अपने वक्ष से चिपटा लेना और कदापि आश्वस्त न होने का प्रण भी गौरवास्पद है ।

किन्तु आज एक नया रूप मेरा द्वार खटखटा रहा है, आँखो की भाषा में मुझे नये जीवन का रहस्य समझा रहा है।

आज मै पुराने आँसू पोछकर अपने पुरातन गीतो का स्वर बदलने को विवश हो गई हूँ।

वन्दी

खोल दो सखि, खोल दो, मुझे अपने वाहुपाग से मुक्त कर दो। मै तुम्हारी चुम्वन-मदिरा का और पान नही कर सकता।

कुसुम के वन्दीगृह मे मुक्त पवन वँधा हुआ है और पुकार रहा है—सखि! छोड़ दो, मेरे आवद्ध प्राणो को मुक्त कर दो।

इस वन्धन मे न ऊपा का आलोक पहुँचता है न आकाश का विस्तार। यहाँ पूर्णिमा की रात्रि भी अन्धकार-मयी रहती है।

सखि! तेरे शिथिल केशपाश ने मुझे पूरी तरह ढक लिया है, तेरे आलिगन मे आकर मुझे जीवन का भय हो गया है। मेरा जीवन मुक्त पवन चाहता है।

किन्तु आज एक नया रूप मेरा द्वार खटखटा रहा है, आँखो की भाषा में मुझे नये जीवन का रहस्य समझा रहा है।

आज मै पुराने आँसू पोछकर अपने पुरातन गीतो का स्वर बदलने को विवश हो गई हूँ।

खोल दो सखि, खोल दो, मुझे अपने बाहुपाश से मुक्त कर दो। मै तुम्हारी चुम्बन-मदिरा का और पान नही कर सकता।

कुसुम के बन्दीगृह मे मुक्त पवन बँधा हुआ है और पुकार रहा है—सखि! छोड दो, मेरे आबद्ध प्राणो को मुक्त कर दो।

इस बन्धन मे न ऊषा का आलोक पहुँचता है न आकाश का विस्तार। यहाँ पूर्णिमा की रात्रि भी अन्धकार-मयी रहती है।

सखि! तेरे शिथिल केशपाश ने मुझे पूरी तरह ढक लिया है, तेरे आलिगन मे आकर मुझे जीवन का भय हो गया है। मेरा जीवन मुक्त पवन चाहता है।

हृदय-धन

मै उसके हाथो को हाथ मे थाम उसे आलिगन मे बाँध लेता हूँ।

अपनी अजलि को उसके सौन्दर्य से भर लेता हूँ। उसके अधरो की मुस्कान का चुम्बनो से अपहरण करता हूँ और उसकी कजरारी आँखो के मादक आसव को अपनी आँखो से पी लेता हूँ।

किन्तु ओह, उसे फिर भी नही पाता हूँ।

आकाश की नीलिमा को आकाश से कौन छीन सकता है ?

मै सौन्दर्य को भुजपाश मे बाँधने का प्रयास करता हूँ, किन्तु वह मेरे बन्धन में नही आता, केवल जड देह ही मेरी भुजाओ के आलिगन मे रह जाता है।

पराजित और श्रान्त होकर मै लौट आता हूँ।

जिस पुष्प को केवल अदृश्य आत्मा ही स्वीकार कर सकती है उसे मेरे हाथ कैसे बाँध सकते है ?

पूर्ण मिलन

सखि ! मै तेरे मिलन की, जो मिलन केवल मृत्यु-समान है, निशि-दिन याचना करता हूँ ।

मुझे वाँध ले, मेरा सर्वस्व छीन ले, मेरी लज्जा, मेरे वस्त्र, मेरा आवरण, सब छीनकर नष्ट कर दे ! मेरी आँखों से नीद ले ले, और निद्रा के स्वप्न छीन ले !

मेरे सम्पूर्ण जागृत विश्व का अपहरण कर ले, मेरे अनन्त जीवन-मरण पर अधिकार कर ले ।

विश्व-वीथियाँ जव पूर्णतया निर्जन हो जायँ, सूर्य-चन्द्र के दीप निर्वाण पा चुके हों, तव तेरे और मेरे निरावृत नग्न प्राणों का सीमाहीन काल तक मिलन होगा ।

क्या यह दुराशा-मात्र है अथवा मन का झूठा स्वप्न है? नहीं, कदापि नही, तुझे छोड़कर मेरा ऐसा पूर्ण मिलन किससे हो सकता है !

दो बहनें

दोनो बहने जब भी पानी भरने जलाशय पर जाती है, हॅसती-मुस्काती क्यो जाती है ?

वे देखती है कि एक पथिक पथप्रान्त मे चुपचाप खड़ा है। इसी कु ज की निविड छाया में वे आती है। उनके कटाक्ष का लक्ष्य क्या होता है, कौन जाने !

दोनो बहने जब भी पानी भरने जाती है तो वे हँसती-मुस्काती क्यो जाती है ?

दोनो बहने जब इस स्थान से पानी भरने जाती है तो कानो मे जाने क्या कुछ कहती जाती है, जाने कौनसी गुप्त मन्त्रणा करती है ! दोनो इसी स्थान पर आती है। किसके मन मे कौन कथा, कौन कल्पना भरी है, कौन जाने !

अचानक ही उनकी गागर छलक जाती है और पानी छलछला उठता है। हो-न-हो उन्हे मालूम हो गया है कि जब भी वे पानी भरने यहाँ से गुजरती है, वृक्षो की ओट मे खडे हुए पुरुप का आकुल हृदय चचल हो उठता है।

दोनो बहने जब भी पानी भरने को जाते हुए इस स्थान पर पहुँचती है तो कौतुक-भरी आँखो से एक-दूसरे को देखकर मुस्करा उठती है। उनके चचल चरणो मे हँसी छलछला उठती है। उसी समय वृक्ष की ओट मे खडे हुए श्रान्त पथिक का मन बेकल हो उठता है। कौतुक-भरे चचल पैरो से वह चकित-सा खडा रह जाता है। उसी समय कलस को छूकर किसी के कगन झनकार कर उठते है।

दो बहनें

दोनो बहने जब भी पानी भरने जलाशय पर जाती है, हँसती-मुस्काती क्यो जाती है ?

वे देखती है कि एक पथिक पथप्रान्त मे चुपचाप खडा है। इसी कु ज की निविड छाया में वे आती है। उनके कटाक्ष का लक्ष्य क्या होता है, कौन जाने !

दोनो बहने जब भी पानी भरने जाती है तो वे हँसती-मुस्काती क्यो जाती है ?

दोनो बहने जब इस स्थान से पानी भरने जाती है तो कानो मे जाने क्या कुछ कहती जाती है, जाने कौनसी गुप्त मन्त्रणा करती है ! दोनो इसी स्थान पर आती है। किसके मन मे कौन कथा, कौन कल्पना भरी है, कौन जाने !

अचानक ही उनकी गागर छलक जाती है और पानी छलछला उठता है। हो-न-हो उन्हे मालूम हो गया है कि जब भी वे पानी भरने यहाँ से गुजरती है, वृक्षो की ओट मे खडे हुए पुरुष का आकुल हृदय चचल हो उठता है।

दोनो बहने जब भी पानी भरने को जाते हुए इस स्थान पर पहुँचती है तो कौतुक-भरी आँखो से एक-दूसरे को देखकर मुस्करा उठती है। उनके चचल चरणो मे हँसी छलछला उठती है। उसी समय वृक्ष की ओट मे खडे हुए श्रान्त पथिक का मन बेकल हो उठता है। कौतुक-भरे चचल पैरो से वह चकित-सा खडा रह जाता है। उसी समय कलस को छूकर किसी के कगन झनकार कर उठते है।

आहत

अब अपना अन्तिम गीत समाप्त कर, मेरे साथ चल !

रात्रि के इन क्षणों को भूल जा, अब रात्रि नही रही ।

किन्तु, कौन है जिसे मै अपने हाथों मे बाँधना चाहता हूँ ? भला स्वप्नो को कौन बाँध सकता है !

मेरी भुजाएँ महाशून्य को मेरे हृदय से बाँधने का यत्न करती है । इससे मेरा हृदय आहत हो जाता है ।

दुराकांक्षा
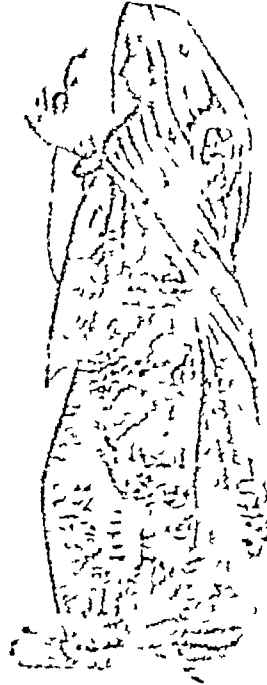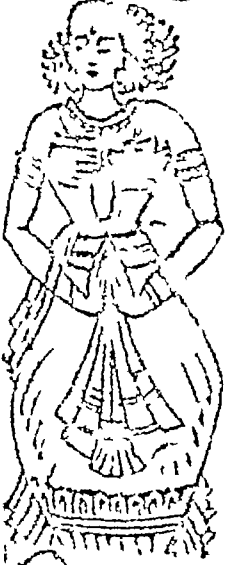
दीपक क्यों बुझ गया ?

मैंने इसे बहुत यत्न से रात-दिन जागकर ढका था, तभी यह बुझ गया।

फूल क्यों मुरझा गया ?

मैंने चिन्तित, भयाकुल हो इसे छाती से चिपटाकर रखा था। ओह, तभी यह मुरझा गया।

नदी की जलधारा क्यों सूख गई ?

मैंने इसे चारों ओर से समेटकर रखा था, जिससे इसका प्रवाह असीम काल तक बना रहे, तभी यह जल-धारा सूख गई।

वीणा की यह तार क्यों टूट गई ?

अतिशय उद्वेग और तन्मयता से कसकर मैंने इन तारों से स्वर निकालने की योजना बनाई थी, तभी तो वीणा की तार टूट गई।

भर्त्सना

तुम अपने कटाक्ष से व्यर्थ ही मेरा तिरस्कार क्यों करती हो ?

मै आँगन की सीमाभित्ति के पास से अपने गृह-द्वार की ओर आ रहा था।

मैंने तुम्हारे बाग से एक भी फूल नहीं तोड़ा, एक भी फल नही लिया। मै तो जाते-जाते तुम्हारे गृह-द्वार के पास घनश्यामल तमाल तरु की छाँह मे, नत-शिर, करबद्ध, घड़ी-भर विश्राम लेने रुक गया था। मैंने तुम्हारे पुष्प-वन का एक भी पुष्प नही तोड़ा। मै तो पथप्रान्त पर सामान्य पथिक की तरह थोड़ी देर के लिए ही रुका था।

तुम व्यर्थ ही मेरा तिरस्कार क्यों करती हो ?

हाँ, मेरे पैर थक गए थे, आषाढ के मेघ धारा-प्रवाह बरसने लगे थे, पवन के झोके मे झूमते हुए वेणुओं का नृत्य हो रहा था। आकाश मे घनघटा ऐसे भाग रही थी जैसे पराजित सैन्यदल शिविर की ओर भागता है। मेरे पैरों मे थकान भरी थी। पथ का पक मेरे दोनो पैरों मे चिपटा था।

न जाने तुमने मेरे लिए क्या-क्या सोचा होगा ? उस समय तुम मुक्तकेशा अकेली वातायन पर न जाने किसकी प्रतीक्षा मे बैठी थी !

विद्युत् के क्षणिक आलोक ने तुम्हारी आँखों मे प्रकाश भर दिया था।

मै तो अँधेरे मे खड़ा था। तुम मुझे देख लोगी,
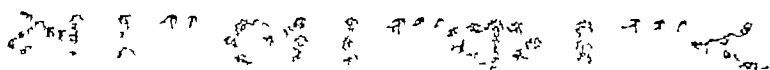
कैसे जान पाता ? न जाने तुमने मेरे लिए क्या-क्या सोचा होगा ।

दिन बुझ गया है, आकाश मेघाच्छन्न है, किन्तु बरसात क्षण-भर को रुक गई है। वेणु-वन का पवन भी थम गया है। मै तुम्हारी छाया छोडकर चला जाता हूँ।

सध्या हो गई है, अपना द्वार रुद्ध कर लो, मै अपनी राह पर जा रहा हूँ। दिन बुझ गया है, आकाश मेघाच्छन्न है।

व्यर्थ ही तुम नीरव कटाक्ष से मेरा तिरस्कार करती हो। इस पथ से दूर उन वृक्षो की छाया मे मेरी कुटी है। सध्या समय उस कुटी में ध्रुवतारा समान दीपक जल रहा है। मै इस कगाल वेश मे किसी के घर के द्वार पर जाकर कोई दान नही करना चाहता। तुम व्यर्थ ही अर्थ-भरी दृष्टि से मेरा नीरव तिरस्कार करती हो।
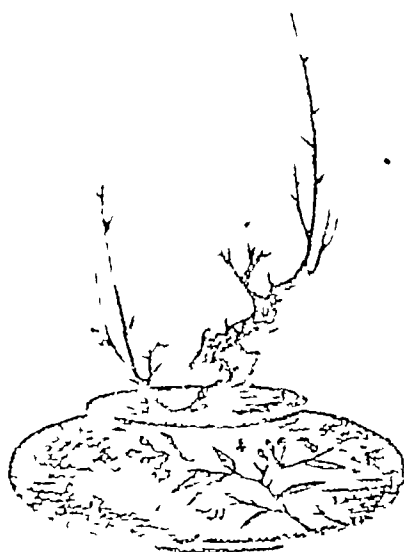
विरह

जब तुम गये तभी मेरी दोपहर हो गई ।

मेरे आकाश का सूर्य तभी रौद्र रूप हो गया ।

घर के सब काम समाप्त कर मैं अकेला घर के वातायन पर बैठा था । चैत्र मास मे हवा के झोके दूर-दूर के खेतो की गन्ध लेकर मुक्त द्वार पर आ रहे थे, दो कबूतर एक रट से घ-प की रट लगा रहे थे, केवल एक भ्रमर चैत्र मास के नाना खेतो का समाचार लेकर आया था और गुनगुना रहा था ।

पथ पर कोई पथिक न था । मध्याह्न की जलती धूप से बचकर सारा गाँव छाया मे विश्राम कर रहा था । वृक्षो के झुरमुटो मे अविश्रान्त स्पन्दन उठ रहा था । मैं आकाश मे अपलक देखती हुई नीले अक्षरो मे अपने किसी परिचित नाम के अक्षरो का जाल बुन रही थी, और सारा गाँव तपते मध्याह्न मे क्लान्त, कातर था । पथ पर कोई पथिक न था ।

मैं अपनी वेणी गूँथना भूल गई थी । अलसाए पवन के झोके मेरी मुक्त वेणी से खेल रहे थे ।

गाँव की नदी का पानी वृक्षों की छाया से ढके तट से छूता हुआ कलकल करता वह रहा था ।

आकाश शुभ्र अलस मेघों से भरा था ।

मैं अपनी वेणी बाँधना भूल गई थी ।

जब तुम विदा हुए तो मध्याह्न का समय था ।
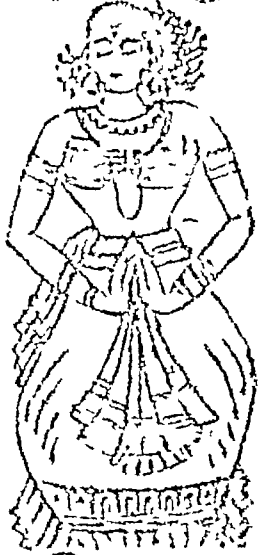
मार्ग की धूल घाम से तप रही थी और खेत हाँफ रहे थे। कबूतर घने कुंजो मे घूँ-घूँ की रट लगाए बैठे थे। मै अकेली शून्य शयन-गृह के झरोखे मे बैठी थी। दोपहर का समय था।

मार्ग की धूल घाम से तप रही थी और खेत हाँफ रहे थे। कबूतर घने कुंजों में घूँ-घूँ की रट लगाए बैठे थे।

मैं अकेली शून्य शयन-गृह के झरोखे में बैठी थी। दोपहर का समय था।

किधर ?

संध्या हो गई, बाजार बन्द हो गया। अब तू अपनी झोली उठाए इतने वेग से किधर जा रहा है ?

वे सब अपना भार लेकर वापिस घर आ गए हैं, एकादशी का चाँद गाँव के वृक्षों पर से झाँकने लगा है। कोई नदी पार की नाव को पुकार रहा है। उसकी प्रतिध्वनि नदी के श्यामल जल को छूती हुई किनारे के उन कुंजवनों तक पहुँच रही है, जहाँ सारस-युगल सो रहे हैं।

जब बाजार बन्द हो गया तो तू अपनी झोली उठाकर तेजी से किधर जा रहा है ?

पृथ्वी की पलको को निद्रा ने झुका दिया है। कौओं के घोंसलों का कलरव भी शान्त हो चुका और वेणु-कुंजों मे से भी कोई शब्द नही आ रहा। झाडियों मे से केवल झिल्ली स्वर सुनाई दे रहा है। वायु भी शान्त हो गई है।

खेतों से वापिस आए श्रान्त कृषक शयन-हित अपने घर के आँगन मे चटाई बिछा रहे हैं। संध्या-प्रदीप की शान्त ज्योति जगमगा रही है।

ससार की सब चेष्टाओं का अन्त हो गया। ऐसे समय तू अपनी झोली उठाकर अधीर, चचल वेग से किधर जा रहा है ?
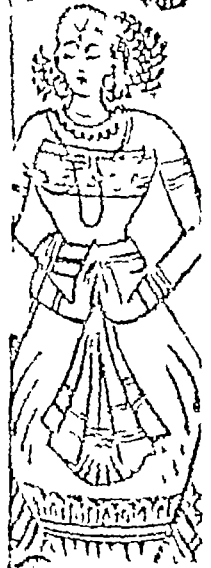
स्थायी अस्थायी

हे ससार, हे लता ! मैंने तेरा एक फूल तोड़ा था ।

उसकी माला को मैंने हृदय से लगाया तो मेरी छाती मे काटा खुभ गया ।

दिन ढलने और अँधेरा होने पर मैंने देखा कि तुम्हारा फूल तो मुरझा गया था किन्तु मेरे हृदय की कण्टक-जन्य व्यथा अभी हरी थी ।

ए दुनिया, तुम्हारे पास अनेक गन्ध, मधु और कोमलता-भरे कुसुम है ।

किन्तु, आज इस अधेरी रात मे मेरा फूल चुनने का समय बीत चुका है, और अब मेरे पास केवल कण्टक-विद्ध हृदय की व्यथा ही शेष है ।
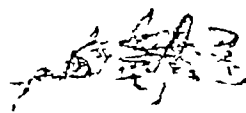
व्यक्त प्रेम

किसने निकट बुलाकर मेरी लज्जा का आवरण दूर कर दिया ? कौन हृदय-द्वार बन्द कर मुझे बाहर खीच लाया और अन्त मे पथ पर मेरा परित्याग कर दिया ?

मै घर के काम-काज मे व्यस्त सब गृहस्थ स्त्रियों के बीच अपने मे ही खोई एक सामान्य गृहिणी थी ।

न जाने क्यो तुमने मुझे ही चुन लिया और मुझे साधारण पारिवारिक जीवन की शीतल छाया से दूर खीच लिया ।

अप्रकट प्रेम बड़ा पवित्र होता है । वह अन्धकार-भरे हृदय-तल मे माणिक के समान प्रज्वलित होता है ।

तू नारी-हृदय को टुकडे-टुकड़े कर उसकी थाह पाना चाहता था । लाज से थर-थर काँपते कातर नारी-हृदय को तूने उसके आवरण से बाहर खीच लिया ।

शेष सभी कुलवधुओ के लिए उनकी दुनिया वैसी ही बनी हुई है । वही वसन्त, शरत, वही चम्पा की शाखा, वही छायापथ, वही हास्य-रुदन, पूजा, दीप, सब-कुछ वही है । कोई उनका हृदय-हार लेकर उनकी थाह पाने का यत्न नही करता, उनके अन्तरतम मे किसी की दृष्टि नही पहुँच पाती और स्वयं वे भी अपने अन्तर का मर्म नही जानती ।

यूँ ही रोते-हँसते, बाते करते या घर का काम करते-करते उनका दिन बीत जाता है । प्रतिदिन वे मन्दिर

में जाती है, घर का दीपक जलाती है और घाट से गागर भर लाती है।

मैं ही आज भग्न-पुष्प की तरह राजपथ की धूलि में मिली हूँ।

अब तुम्हारा मार्ग तो तुम्हारे सामने खुला है, तुम उस पर वापिस जाने को स्वतन्त्र हो। किन्तु, मेरा पथ अवरुद्ध हो गया। मैं धूलिसात् हो गई। मेरे वापिस जाने की आशा नही रही।

यह तूने कितनी निदारुण भूल की? एक अभागिनी रमणी के हृदय का आवरण खोल दिया। अब शतलक्ष आँखें कौतुक से मेरे अनावृत कलक का पान करेगी।

नारी का दान

एक प्रभात की स्वर्ण-वेला···

कुंज-तले एक चक्षुहीन बालिका कमल के पत्ते पर पुष्प-हार सजाकर लाई।

मैंने वह पुष्पहार गले मे धारण कर लिये, कृतज्ञता से मेरी आँखो मे आँसू भर आये और मैंने कदम्ब की छाया में खड़ी चक्षुहीन वालिका से कहा :

सुकुमारी, तू भी अपने पुष्प-हार के ही तुल्य है। पुष्प को भी अपने रूप का बोध नही और नेत्र न होने से तू भी अपने सौन्दर्य-बोध से वचित है।

कस्तूरी-मृग

मै स्वर्णमृग का व्याध हूँ।

मित्र, भले ही हँसो, मै अपने उस स्वप्न का पीछा नही छोड़ूँगा जो मुझे छलकर चला गया है।

मै अब पर्वतो पर, पर्वत-घाटियो पर, अज्ञात प्रदेशो मे, नामहीन वन-ग्रामो मे घूम रहा हूँ, क्योकि मै स्वर्ण-मृग का शिकारी हूँ।

तुम बाजार मे आते हो और अपने मन की चीज़े लेकर घर लौट जाते हो, किन्तु मुझे सदा चचल पवन के चमत्कारी हाथ ने छू लिया है—कब और कहाँ, इसका मुझे भी ज्ञान नही है।

अब मेरे मन मे कोई भी दूसरी कामना नही, अपना घर-घाट और सारा धन-सामान मै पीछे छोड आया हूँ।

मै अब पर्वतो, घाटियो और अज्ञात वन-ग्रामो मे भटक रहा हूँ—कारण, मै स्वर्ण-मृग का व्याध हूँ।

कस्तूरी-मृग

मै स्वर्णमृग का व्याध हूँ।

मित्र, भले ही हँसो, मै अपने उस स्वप्न का पीछा नही छोडूँगा जो मुझे छलकर चला गया है।

मै अब पर्वतो पर, पर्वत-घाटियो पर, अज्ञात प्रदेशो मे, नामहीन वन-ग्रामो मे घूम रहा हूँ, क्योकि मै स्वर्ण-मृग का शिकारी हूँ।

तुम बाजार मे आते हो और अपने मन की चीजे लेकर घर लौट जाते हो, किन्तु मुझे सदा चचल पवन के चमत्कारी हाथ ने छू लिया है—कब और कहाँ, इसका मुझे भी ज्ञान नही है।

अब मेरे मन मे कोई भी दूसरी कामना नही, अपना घर-घाट और सारा धन-सामान मै पीछे छोड आया हूँ।

मै अब पर्वतो, घाटियो और अज्ञात वन-ग्रामो मे भटक रहा हूँ—कारण, मै स्वर्ण-मृग का व्याध हूँ।

विदाई-काल

शान्त, मेरे हृदय, शान्त रह, धैर्य धर, वियोग का समय मधुर होने दे ! यह वियोग मृत्यु का सन्देशहरन हो, विच्छेद भयाकुल न हो, केवल लक्ष्य-प्राप्ति का हो, पूर्णता का हो।

इसकी स्मृति केवल सुखद हो। व्यथा का प्रयोजन केवल गीतो के सृजन में पूर्ण हो जाय, तट का प्रयोजन बहती नाव को विश्रान्ति देना ही रहे !

इस खेल का विराम नये खेल के प्रारम्भ का सूचक हो, वासना के चरम शाम्य मे हो; और विस्तृत नभ की विश्रान्ति पक्षी के घोंसले मे हो !

वियोग के इन क्षणो मे दिवसान्त का कोमल हाथ मानव के मस्तक पर पड़े, पलको मे नीद भर जाय और हृदय-रूपी पत्रपुट के एकान्त से रात्रि-पुष्प की कली फूट पड़े।

उस समय आरती के शखनाद मे हास्य न हो, अश्रु न हो, केवल वैराग्यमय विशाल विश्राम की ध्वनि निकले।

प्रभात मे जो पक्षी कलरव करते आकाश मे उड़े थे वे सव इन क्षणो मे यहाँ आकर विश्रान्ति ले, प्रभात मे जिन कलियो ने अँगडाई ली थी, वे फिर आँखे मूँद ले, उदय-काल मे पवन की जो तरगे चचल हो उठी थी वे थककर थम जायँ और असीम नभ के विस्तीर्ण वक्ष पर नीरव, नक्षत्र-लोक का उदय हो !

हे महासुन्दर शेप, हे विदाई के क्षण, हे सौम्य

विपाद, क्षण-भर धैर्य धरो, आँखो का जल पोछ लो और आशीर्वाद दो !

क्षण-भर ठहर, विदाई के क्षण ! तेरे यात्रा-पथ पर निष्कम्प प्रदीप रख, मै नि:शब्द आरती कर लूँ, क्षण-भर ठहर !

स्वप्न

दूर, बहुत दूर, क्षिप्रा नदी के पार स्वप्न-लोक मे मै अपने पूर्व-जन्म की प्रिया को खोजने निकला।

वह जन-शून्य वन्य-वीथिका थी। सन्ध्या की रश्मि-रेखा वकिम, सकीर्ण, दुर्गम, निर्जन पथ के किनारे प्रिया का भवन था। प्रिया के कपोत-युगल घर के ही चारो ओर उड़ रहे थे। एक मयूर निद्रा में मग्न बैठा था।

इसी समय हाथ मे दीपशिखा लेकर मेरी मालविका धीमे-धीमे झुकी। मानो वह लक्ष्मी की मूर्ति थी! उसके अंग-अंग मे कुंकुम गन्ध थी, उसके सर्वाङ्ग से व्याकुल निःश्वास निकल रहे थे। वह दीपक को द्वार के पास रख-कर प्रतिमा की भाँति मेरे सामने खड़ी हो गई और मेरे हाथ पर हाथ रख नीरव आँखो से मेरी ओर देखते हुए पूछने लगी: "कुशल तो है बन्धु!" मैने उत्तर देने का यत्न किया। किन्तु मेरे शब्द खो गए थे। मानो भाषा ही भूल गया था। शून्य मन से केवल खड़ा रहा। हम दोनों अपने भावों का अवगाहन करते रहे, आँखों से अबाध अश्रु झरते रहे और नयन निःस्पन्द हो गए।

मै सोचता रहा, सोचता रहा, अपना नाम भी मेरी स्मृति से उतर गया था।

न जाने इसमें क्या छल था!

उसकी आँखों मे आँसू चमकने लगे। उसने अपना कोमल हाथ मेरे दक्षिण हाथ पर रख दिया। जैसे सन्ध्या-काल का गगन-विहारी विहगम तट की आशा में मन्द पड़

गया हो ।

वह नीचे झुकी, उसके व्याकुल, उदास, निःशब्द नि श्वास मेरे नि श्वास से टकरा गए ।

रजनी का अन्धकार उज्जयिनी के लुप्त प्रकाश मे एकाकार हो गया। क्षिप्रा नदी के तट पर स्थित शिवमन्दिर की आरती बन्द हो गई और प्रबल झझावात मे द्वार का दीपक बुझ गया ।

मानसी

नारी ! तू केवल परम पुरुप की कला-कृति नही हो; पुरुष भी अपने अन्तःसंचारि सौन्दर्य से तुझे रूप-सुषमा देता है।

कविगण अपने उपमा-सूत्रों से तेरी रूप-रेखा बुनते है। प्रस्तर-शिल्पी तेरी पाषाण-मूर्ति मे प्राण प्रतिष्ठान कर तेरे रूप-सौष्ठव को अमर बनाते है।

समुद्र से मोती, पृथ्वी से स्वर्ण, मधुवन से असख्य पुष्प संचय कर पुरुष तेरा शृंगार करता है। तेरे पदतल आरक्त करने को असंख्य वनकीट प्राण देते है।

पुरुष तुझे लज्जा देता है, आभूषण देता है, आवरण देता है और दुर्लभ गुप्त निधि की तरह तुझे दुष्प्राप्य बना देता है।

उसकी सम्पूर्ण प्रदीप्त वासनाएँ तुझ पर समर्पित होकर तेरे रूप का निर्माण करती है।

तेरा अर्द्ध भाग मानवी है और शेष अर्द्ध कल्पना। केवल विधाता की ही कृति नही, तुम नारी, मनुष्य ने भी तेरी रूप-सुपमा के निर्माण मे भाग लिया है।
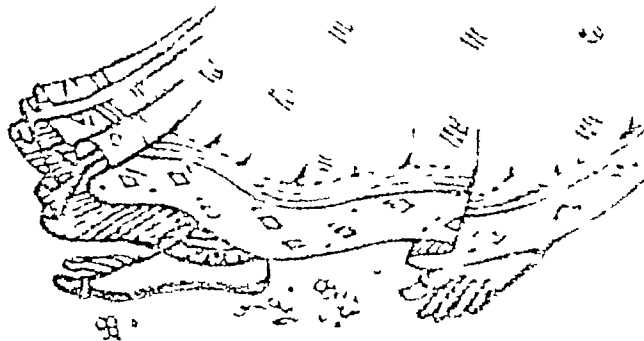
कागज की नाव

मुझे आषाढ मास के वे सुन्दर क्षण याद आते है जब सरोवर के किनारे बैठा मै कागज की नाव से खेला करता था ।

दिन-रात वृष्टि पडती थी, खेलने को कोई साथी नही था, अकेला बैठा-बैठा मै अपने से ही खेलता था ।

अकस्मात् घटाटोप मेघ घिर आये थे, आँधी वेग से चल पडी थी और जल की अजस्र धाराएँ उमड पडी थी ।

जलाशय की तरगे उन्मत्त हो उठी थी, मेरी नाव सरोवर के तूफान मे डूब गई थी ।

उस दिन मै मन मे सोचने लगा, यह दुर्भाग्यपूर्ण आँधी अवश्य ही मेरी नाव को डुबाने के लिए आई थी, इसे त्रिभुवन मे कोई और दूसरा काम नही रह गया था क्या ?

आज फिर आषाढ मे मै अकेला घर मे बैठा निरुद्देश्य दिन काट रहा था और उन नाना खेलो की याद मे खो गया था जिनमे दैव को दोषी ठहराया जाता है ।

मै अपने दुर्दैव को कोस रहा था और उसकी वचनाओ पर मन-ही-मन जल रहा था । उसी समय मुझे फिर उस कागजी नाव की याद आ गई जो जलाशय मे डूब गई थी ।

अशेष

क्या तूने मुझे एक बार फिर बुलाया है ?

मेरे सब काज पूरे हो गए। माधवी वन को जगाते असंख्य क्षण प्रत्यूषनवीन चले गए।

शाम हो गई है, प्रिया की आग्रहशील भुजाओं के समान मेरी थकान ने मुझे परिवेष्टित कर लिया। पुष्प के पराग से प्रखर प्यास बुझाते अनेक मध्याह्न बीत गए। मैदान के पश्चिम ओर म्लान हँसी हँसते अपराह्न का भी अवसान हो गया। ऐसे समय उस पार उतरने को जब मैंने नाव पर पैर रखा तो क्या तूने मुझे फिर बुलाया ?

हे मोहिनी, हे निष्ठसे, कठोर स्वामिनी ! मै दिन-भर तेरे द्वार पर खड़ा रहा हूँ, अब तू मुझसे मेरी रात्रि का भी अपहरण करना चाहती है ?

जगत् मे सब सीमाओं का कही-न-कही शेष है। उन सब सीमाओ का मर्म छिन्न कर तेरा आदेश आया है, तूने मुझे एक वार फिर वुलाया है।

दक्षिण समुद्र-पार के प्रासाद-द्वार की सदा जागृत रानी !

क्या संध्या-काल मे शान्त स्वर, क्लान्त ताल में वैराग्य-वाणी नही फूटती ? क्या तेरे मूक वन मे तेरी अँधेरी शाखो पर पक्षी नही होते, नि.शब्द के दूत सितारे नही उठते ? क्या तेरे लता-वितान तले पुष्पदल मृत्यु के कोमल स्पर्श के साथ मुरझाकर चुपचाप धूल मे नहीं गिरते ?
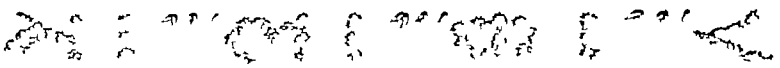
हे अश्रान्त शान्तिहीन ! दिवस का अन्त हो गया। अब भी क्या तेरा आह्वान आया है ?

प्रिया की उदास आँखें व्यर्थ ही मेरी प्रतीक्षा मे रोती रहेगी और निर्जन घर के एकान्त मे अकेला दीपक जलता ही रहेगा।

दिन-भर के थके किसान नौकाओ पर चढकर घरो को वापिस जा रहे है, उन्हे जाने दो। मै ही अकेला अपने स्वप्नो को पीछे छोडकर तेरे आह्वान का अनुसरण करता हुआ तेरे समीप आ रहा हूँ।

दिन शेष

अतिथिशाला भग हो गई । शाला की जर्जर दीवारो पर एक जीर्ण वटवृक्ष था ।

प्रखर धूप से तप्त पथ पर मै घूमता रहा, इस आशा से कि सन्धि-वेला मे वृक्ष की छाया पाकर विश्राम करूँ ।

दूर तक बिछे खेतो मे काम कर कृषक गाँव मे वापस आते तो यहाँ बैठते ।

वर्षो तक न जाने कितने काल से, कितनी सन्धि-वेलाओ मे थके पथिक अपने पैरों को ठडे जल से धोने वहाँ आते रहे थे । स्निग्ध शीतल चन्द्र-ज्योत्स्ना से प्रभासित पथिकशाला के प्रागण मे बैठकर वे सब विचित्र देशों की कथाएँ कहा करते थे । पूर्व दिशा से उदय होता हुआ चाँद भी वृक्ष के पत्तों से झाँककर विस्मय से उनकी बाते सुना करता था ।

प्रभात मे वे पथिक पूर्ण विश्रान्ति के बाद पक्षियों का स्वागत-गीत सुनते हुए जागते और पथ-प्रान्त की वस-लता फूलो के बोझ से डोल-डोलकर उनका अभिनन्दन करती थी ।

किन्तु जब मै वहाँ गया तो किसी जलते दीप ने मेरी प्रतीक्षा नही की । बहुत समय पहले भूल से जलते रह गए दीपक की दीवारो पर जो काली छाया पड़ रही थी वही अन्धे की खोखली आँखो के समान मेरी ओर घूर-घूरकर देख रही थी ।

पास के सूखे तालाब की झाडियो से चिनगारियाँ
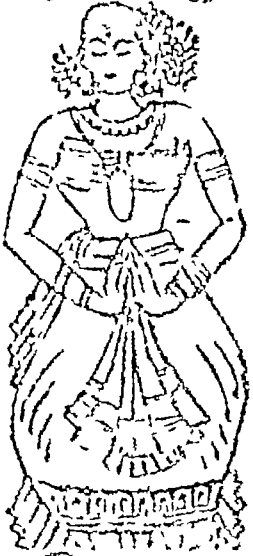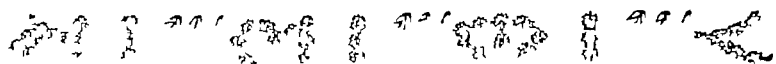
उठ रहो थी और वेणु-वृक्षो की भयानक लम्बी-लम्बी पर-
छाइयाँ रास्ते पर पड रही थी ।

सन्ध्या-समय यात्रा के अवसान पर भी मै किसी का
अतिथि न बन सका । हाय रे, मै नितात थका हुआ हूँ ।

विजन दीर्घ रात्रि । हाय रे क्लान्त काया । मै
किसी का अतिथि न बन सका ।

पारस-मणि

एक दीवाना पारस-मणि की खोज मे लगा था । उसके मस्तक पर बृहत् जटाएँ बढ गई थी, उसके धूल से भरे भूरे बालो मे लटे पड़ गई थी, सारा देह ककाल के समान कृश हो गया था, ओष्ठ घर के निरुद्ध कपाट के समान बन्द हो गए थे । रात-दिन उसकी आँखों मे पारस-मणि के अन्वेपण की तीव्र ज्वाला जला करती थी । उसके दो नेत्र रात के खद्योत-समान अपने ही प्रकाश मे उड़ते हुए पारस की खोज मे पागल हो रहे थे ।

उसके समक्ष अथाह अपार सागर गरज रहा था । सागर की गरजती लहरे समुद्र के गर्भ मे छिपे रत्न-भण्डार की चर्चा कर रही थी और उन अन्वेपकों पर हँस रही थी जो सागर के घोष का मर्म नही समझ सकते थे ।

अब उस दीवाने को पारस-मणि पाने की आशा नही रही, फिर भी वह अपनी खोज वन्द करके विश्राम नही लेता था । उसकी आशा तो लुप्त हो गई थी, किन्तु पागलो की तरह खोजने की आदत लुप्त नही हुई थी ।

एक दिन जव वह इसी तरह पागल-सा पारस-मणि ढूँढ रहा था एक गाँव का वालक उस दीवाने के पास आकर वोला, 'हे संन्यासी, इन कंकड़ो मे क्या खोज रहे हो ? यह सोने की कडी तुम्हे कहाँ से मिली ?'

सन्यासी यह सुनकर चौंक उठा । उसे पता ही न था कि उसकी लोहे की कड़ी कव सोने की हो गई थी । यह कैसा चमत्कार था ! आँख मलकर उसने देखा, सचमुच
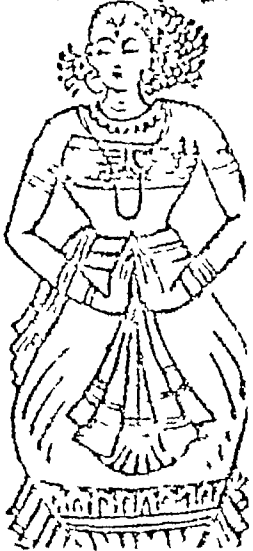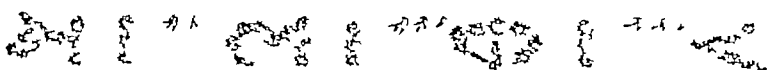
यह स्वप्न नही था। किन्तु हाय, उसे यह पता न लगा कि कब यह चमत्कार हो गया था !

कपाल पर हाथ रखकर वह भूमि पर बैठ गया और अपनी लाछना करने लगा—'आह, मुझे यह ज्ञान क्यो नही हुआ कि किस पारस से छूकर मेरी कडी सोने की बन गई।' पागलो की तरह पुकार उठा वह—'पारस पत्थर कहाँ है, हाय कहाँ है ?'

इस निराशा में उसकी कामना का, समस्त आशाओ का और पारस पत्थर पाने के उत्साह का अन्त हो गया था। फिर भी वह पारस-मणि की खोज मे चल पडा, केवल अभ्यासवश। वह समुद्र-तट के प्रत्येक पत्थर को उठाता था, अपनी कडी से छुआता और फेक देता था। वह यह भी नही देखता था कि उसके स्पर्श से लोहे की कड़ी स्वर्णमयी बन गई या नही। इसी भाँति उस दीवाने को एक दिन पारस-मणि मिली और खो गई।

वह उस विरही विहग के समान था जो अभागा दिन-रात वृक्ष की शाख पर बैठा प्रेमी को पुकारता है, उसे देख नही पाता, फिर भी, आशाहीन, श्रातिहीन प्रतिदिन पुकारता, एकमात्र पुकारता ही चला जाता है।

समुद्र भी अन्य सब कामो से विरत हो आकाश मे तरगे उछालता हुआ न जाने किसकी कामना मे अविरत हाय-हाय करता है, लेकिन उसे नही पाता, तब असीम शून्य में वाहु उठाकर खडा रहता है। यही उसका व्रत है।

सपूर्ण व्योमतल, विश्व चराचर किसी की मिलन-कामना से ग्रह त[illegible]-मडल के [illegible] कर रहा है। उसी तर[illegible] [illegible] पुरुप पारस-मणि
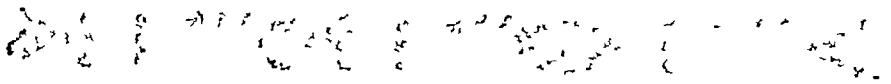
की प्राप्तिहित साधना कर रहा था।

सूर्य पश्चिम दिशा के बादलो मे डूब रहा था। आकाश सोने के रग से रँग गया था। संन्यासी अपने खोये हुए खजाने को फिर से पाने के लिए थके पैरों, पुरातन दीर्घ-पथ पर चल पड़ा। उसके पैरो मे सामर्थ्य नही थी, देह-भार से कमर झुक गई थी, दिल का दीपक निर्वाण की सीमा पर था और उसकी शिराएँ जड़ समेत उखड़े हुए वृक्ष की तरह सूख गई थी। फिर भी, वह अपने पद-चिह्नों पर पारस की खोज मे जा रहा था।
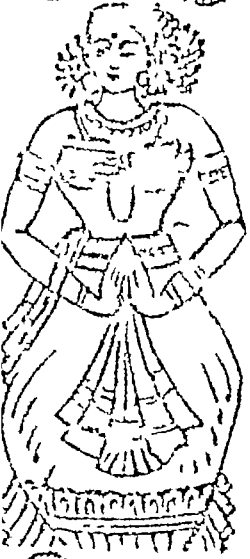
दिग्दिगन्त मे मरुसिकता धू-धू कर रही थी। म्लान रजनी की छाया मे वह सन्यासी बैठा था। उसका समग्र जीवन पारस की खोज मे बीत गया था। कौन जाने कब उसकी आँख बन्द हो जाय! किन्तु इन अर्धमग्न प्राणो के साथ एक बार फिर वह पारस-मणि की खोज मे चल पड़ा।

वह किसे बुलाकर अपनी कथा कहता? इस संसार मे उसका कोई न था। पथ के भिखारी समान वह दीन-हीन था।

वह आकाश मे उड़ना चाहता था, उत्कट प्रतीक्षा से उसके नयनों मे निमेप नही रहे थे, हू-हू कर अबाध पवन वह रहा था।

सूर्य प्रात:काल पूर्व गगन के मस्तक पर निकलता। सन्ध्या वेला मे चाँद भी धीरे-धीरे निकल आता। अवि-रल जलराशि कल-कल करती अतल का रहस्य प्रगट करने को आतुर होती, मानो उसे पता था कि इष्ट धन कहाँ था। उसकी भाषा को जो समझता वही इस खोज का पार पा सकता था।

निरावते
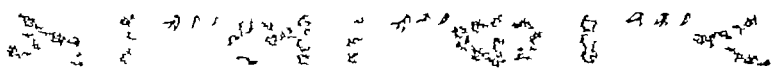
सागर उस महागाथा को अपनी ही भाषा के गीतो में गा रहा था, अपने स्वर को वह आप ही सुनता और समझता था। पारस-मणि का अविरल अन्वेषक पागलो की तरह समुद्र तट पर घूमता रहा।

दुःसमय

हे पक्षी, अपने पंख बन्द न कर !

यद्यपि सन्ध्या ने सब गीतो को बन्द करने का संकेत दे दिया है, तेरे साथी विश्राम करने के लिए अपने घोसलो मे चले गए है और तू थक गया है !

यद्यपि अन्धकार मे भय की धड़कन है और आकाश का चेहरा काले परदे से ढक गया है, फिर भी, हे पक्षी, मेरा कहना मान, अपने पख बन्द न कर !

यह वन के पत्तो का भर-भर शब्द नही है, काले नाग के समान उभरते समुद्र की गर्जना है। यह जूही के फूलों का नृत्य नही, समुद्र तट के फेन का उभार है।

यह वह हरे वृक्षो वाला तट नही है, यहाँ तेरा घोसला नही है। हे पक्षी, मेरा कहना मान, अपने पख बन्द न कर।

तेरे मार्ग में समग्र निर्जन रात्रि है। प्रभात की उषा उन कृष्णकाय पर्वत शिखरो के पीछे मूर्छित सो रही है। आकाश मे सत्रस्त-से निर्वाक् तारे श्वासोच्छ्वास का अवरोध कर रात्रि के पहर गिन रहे है। और यह थका-हारा चाँद गहरी रात की अथाह भील को तैरकर पार करने का अथक यत्न कर रहा है। हे पक्षी, मेरा कहना मान, अपने पखों को वन्द न कर !

तेरे लिए यहाँ अब न आशा है, न भय है।

तेरे लिए यहाँ अब न शब्द है, न मन्त्रणा है, न सदन है।

तेरे लिए अब न घर है, न विश्राम की छाया है।
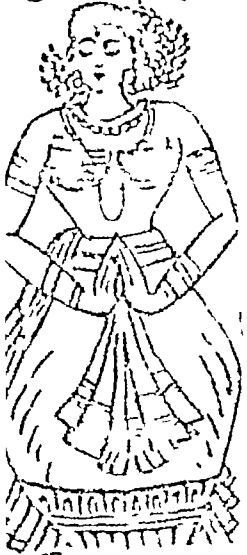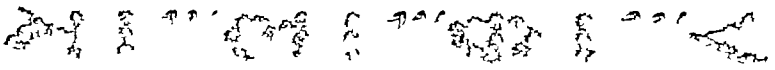
तेरे पास अब केवल अपने पख है और यह पथहीन आकाश है।

हे पक्षी, मेरा कहना मान, अपने पंख बन्द मत कर।
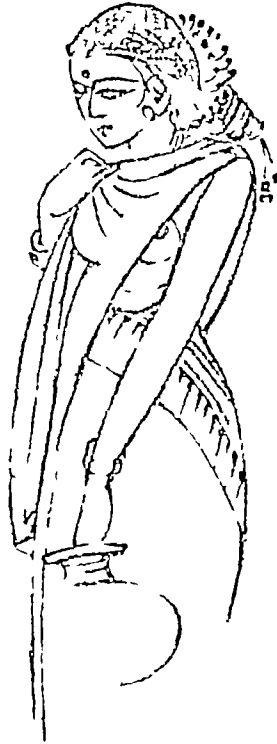
ऐश्वर्य

तरुतल के क्षुद्र तृण भी अपने स्थान पर सरल माहात्म्य के साथ सहज ही रहते है। पूर्व का नवसूर्य और अर्ध-रात्रि का चाँद भी उन क्षुद्र तृणो के सग मिल-जुलकर एक ही आसन पर समभाव से विराजते हैं।

इसी प्रकार मेरे क्षुद्र गीत भी विश्व-गीतों के साथ मिल गए है। श्रावण के धारापात वनवृक्षों के पत्तो की मरमर-ध्वनि के साथ उन गीतों का गुञ्जन एकाकार हो गया है।

किन्तु, हे विलासी ! ससारी ऐश्वर्य-भार से बन्द दरवाजों मे तू अकेला ही रह गया है। सूर्य की स्वर्णिम आभा और गीतमय चन्द्र की मधुर चाँदनी के नित्य आशीर्वाद से तू वचित ही रह गया है।

सम्मुख ही मृत्यु का मुहूर्त्त खड़ा है, उसके सामने तेरा ऐश्वर्य पाशुपाण्डु, शीर्ण, म्लान और मिथ्या होता जा रहा है।
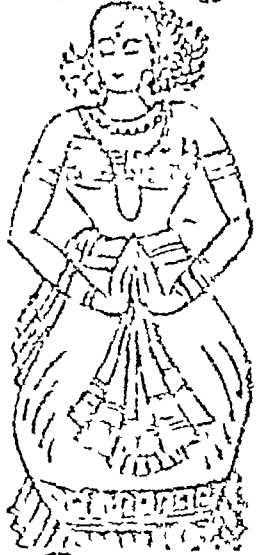
चिरायमना

जैसी है वैसी ही आ जा, शृगार मे व्यर्थ समय न खो ।

कदाचित् तेरे केश-कुन्तल निर्बन्ध हो गए है, मध्य-रेखा विशृखल है, परिधान अस्त-व्यस्त है, तो भी सकोच न कर, जैसी है वैसी ही आ जा, शृगार मे व्यर्थ समय न खो ।

दूर्वादल पर अधीर पग रखती चली आ । तुषार-कणो से तेरे चरणो की महावर घुल जाए, नूपुर के बन्ध शिथिल हो जाये, कठहार के मुक्ता-माणिक बिखर जाये तो भी सकोच न कर, दूर्वादल पर अधीर गति से पग रखती चली आ ।

क्या तू नही देखती, विशाल व्योम में सघन मेघ-माला घिर आई है, नदी कछार से हसो की टोलिया नील गगन मे विहार करने उड चली है, प्रभात के बिछुडे गोवत्स अपने घरो की ओर आतुरता से लौट रहे है, व्योम मे सघन मेघमाला घिर आई है ।

तेरे शयन कक्ष का दीप बुझा जा रहा है, इसकी शिप्रा पवन के प्रहारो से चचल हो रही है । कौन कह सकता है तेरी आँखो मे काजल नही लगा, वे श्याम मेघो से भी अधिक श्यामल है ।

जैसी है वैसी ही आ जा, शृगार मे व्यर्थ समय न खो ।
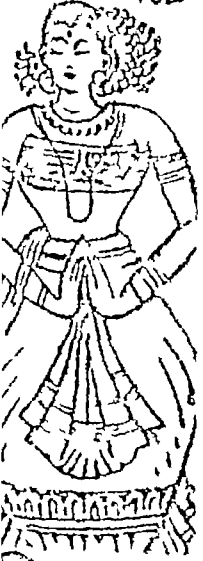
कृतार्थ

दिन की कुछ घड़ियाँ अभी शेष है; नदी-तट का मेला समाप्त होने ही वाला है। अब केवल आषाढ मेघ का अन्धकार ही मेले मे शेष रह गया है।

मुझे भय हुआ कि मेरा समय भी व्यर्थ ही गया और धन भी। मेरी जेब की अन्तिम कौड़ी भी खर्च हो चुकी, मै लुट गया।

किन्तु, नही बन्धु, अब भी मेरे पास कुछ शेष है, मेरे भाग्य ने मुझसे मेरा सर्वस्व नही लूट लिया।

मेरे भाग्य का जितना क्रय-विक्रय था, सब हो चुका। जितना देना-पावना था सब चुक गया।

प्रहरी द्वार नही खोलेगा यदि उसे कुछ न मिलेगा।

चिन्ता नही, अब भी मेरे पास कुछ शेष है, मेरे भाग्य ने मुझसे मेरा सर्वस्व नही छीन लिया।

सहमी हुई हवा आने वाली तूफानी आँधी का सकेत दे रही है, सहसा पश्चिम मे उमड़ते बादल गम्भीर घोष के साथ आकाश मे छा रहे है।

प्रशान्त जल मे आँधी की प्रतीक्षा निहित है। मै वेग से नदी पार करता हूँ, इस डर से कि कही रात्रि का अन्धकार न छा जाय।

माँझी, अपनी मजदूरी की चिन्ता न कर, मेरे पास अब भी कुछ बचा है, मेरे भाग्य ने मेरा सर्वस्व मुझसे नही छीन लिया।

धान के खेतो मे से टेढ़ा-मेढ़ा ग्राम-पथ गया है।
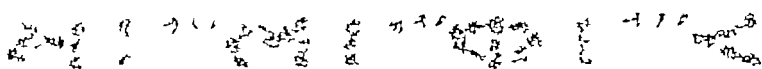
वृष्टि से कुटी-द्वार पर पानी भरा है। बादल थम गए है। एक बार फिर आगे बढने का विचार किया। किन्तु दूकान वाला मूल्य माँगता है।···भय नही, अब भी मेरे पास कुछ शेष है।

मार्ग के एक ओर वृक्ष के नीचे एक भिखारी बैठा है। वह कातर आँखो से मेरी ओर देख रहा है। उसका विश्वास है कि मै दिन-भर के बेचान से मिले अपार लाभ के साथ लौट रहा हूँ।

हाँ, मेरे बन्धु, मेरे पास अब भी कुछ बचा है, मेरे भाग्य ने मेरा सर्वस्व मुझसे नही छीन लिया।

रजनी अन्धकारमयी है, ग्राम-पथ निर्जन है, जुगनू घने पत्तो मे झिलमिला रहे है।

तू कौन है जो दबे पाँव मेरा पीछा कर रहा है?

आह, तू मुझसे मेरा धन छीनना चाहता है? शका न कर, मै तुझे निराश नही करूँगा, क्योकि अब भी मेरे पास कुछ धन शेष बचा है, मेरे भाग्य ने मेरा सर्वस्व मुझसे नही छीना।

दो प्रहर रात बिताने के बाद मै घर पहुँचा। मेरे दोनो हाथ रिक्त थे।

तुम्ही एक सजल-नयन द्वार पर खडी प्रतीक्षा कर रही थी। तुम्हारी आंखो में नीद नही, मुख पर शब्द नही। भयभीत पक्षी की तरह तुम मेरी भुजाओ मे बँध गई, मेरे वक्ष से लग गई।

धन्य परमदेव, धन्य हो तुम, अब भी मेरे पास कितना शेष है! मेरे भाग्य ने मुझसे मेरा सर्वस्व नही छीन लिया।

मन्दिर

कठिन तपस्या के बाद मैने मन्दिर बनाया था। उसके न द्वार थे न वातायन, उसकी दीवारे भारी शिलाओ से बनी थी। सब ओर अन्धकार-ही-अन्धकार था।

मै संसार के सब कर्त्तव्य-कर्म भूलकर स्वयं प्रस्थापित मूर्ति की ओर एकाग्र अपलक देख रहा था। अन्तहीन रात्रि मैने वही बिता दी, शतगन्धमय धूप-अगुरु जलाए।

मन्दिर के अन्तराल मे सदा अन्धकार रहता था, जहाँ सुवासित तेल का दीपक टिमटिमाया करता था।

प्रज्वलित सुरति धूप-धूम्र के अस्खलित धुएँ के घने बादलों ने मेरे हृदय पर आघात किया।

अनिद्रित रहकर मैने मन्दिर की दीवारो पर बहुत सी विलक्षण स्वप्नमय, चमत्कारपूर्ण रेखाकृतियाँ अंकित कर दी। पङ्खदार घोड़े, पुरुषाकृति के पुष्प, सर्पाकृति की स्त्रियाँ, इसी तरह कितने ही वर्णनातीत चित्र चारो भित्तियों पर बनाए।

मन्दिर की भित्तियों मे एक भी झरोखा ऐसा नही रहा, जहाँ से पक्षियो का गीत, पत्तों का मर्मर शब्द, ग्रामीणो की पद-ध्वनि प्रवेश कर सकती।

उस अँधेरे गोपुर मे केवल एक ही ध्वनि प्रतिध्वनित हो रही थी, वह थी विविध रूपो, विविध छन्दो मे गुँथे और दिवस-रात्रि गुंजरित मन्त्र।

इसी तरह कितने ही दिन बीत गए। कोई जान न पाया कि मै अपने ही मे डूबा था। जब जागा तो पाया
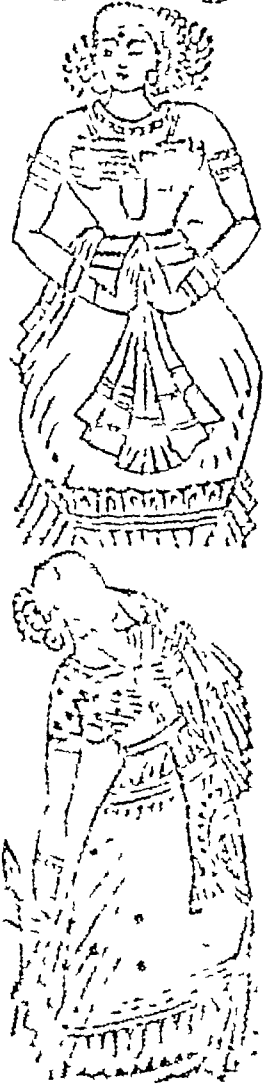
मेरा मन ऊर्ध्वमुखी अग्निशिखा के समान तीव्र और प्रखर था और मेरी चेतना आत्मानन्द में मूर्च्छित-सी थी।

एक दिन एक विषम घोर स्वर सुना।

मेरी मूर्च्छना तभी टूटी जब विद्युत्-रूपी पाषाण ने मन्दिर पर प्रहार किया और एक तीव्र पीडा ने मेरे हृदय को डस लिया।

दीपक लज्जित होकर मन्द पड गया, दीवार के चित्र शृङ्खला मे गुंथे स्वप्नो की तरह उस मन्द प्रकाश मे निरुद्देश्य झाँकने लगे, मानो वे कही अदृश्य होने का मार्ग ढूंढ रहे थे।

मैंने यज्ञ को वेदी पर स्थापित मूर्ति को देखा, वह प्रभु के स्पर्श से जीवित-सी मुस्करा रही थी। जिस रात्रि के अन्धकार को मैंने दीवारो मे बाँधा था वह पंख फैलाकर उड़ गया था।

माता वसुन्धरा

मेरी सर्वसहा, श्यामला, मृणमयी माँ वसुन्धरा, मै तुझ दीन धरिणी की दरिद्र सन्तान हूँ, जो जन्मावधि सुख-दु:ख भार से दबी रहती है।

तू अपनी सन्तान की भूख मिटाने का निरन्तर यत्न करती है, किन्तु तेरे पास अक्षय भोजन नही है, तेरे हाथ मे असीम ऐश्वर्य-राशि नही।

तू हमारे लिए जिस आनन्द को बटोरती है वह असम्पूर्ण है। जो कुछ खिलौने हमारे लिए बनाती है वे टूट-फूट जाते है। तू हमारी सब भूखी तृष्णाओ को शान्त नही कर सकती। तेरी म्लान, क्षुधा-पीड़ित सन्तान 'हाय अन्न, हाय अन्न', कह रो उठती है।

सब पर मृत्यु की भयंकर छाया पड़ी है, सब आशाएँ क्षणजीवी है, किन्तु क्या इसीसे तेरे कठोर हृदय की ममता छोड़ दूँ?

हे धरित्री, तेरी वेदना-कातर, सकरुण हँसी देखकर मेरे अन्तराल में अमित व्यथा जाग उठती है।

तूने अपने वक्ष से सन्तान को रस-रक्त दिया है, अमरता नही दी, इसीलिए अहर्निशि तेरी आँखे अनन्त स्नेह से सन्तान के लिए जागरूक रहती है।

युग-युग से तू गीतों और रंगों से आनन्द आवास का सृजन कर रही है, किन्तु अभी तक तेरा कार्य पूरा नही हुआ। दिवस-रात्रि स्वर्ग नही बने। केवल उसकी झलक-सी उनमे चित्रित हो सकी है।
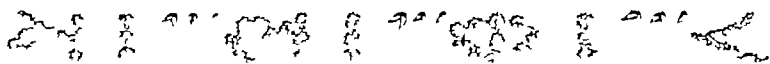
तेरी सौन्दर्य-रचनाओ मे अश्रुओ का अभ्र छा गया है।
तभी तेरा मुख विषादमय किन्तु कोमल है। तेरे सकल सौन्दर्य मे अश्रुजल भरा है।

झरना

वह बाजरे के खेत के पास वाली टेकली पर रहती थी। उसकी झोपड़ी को छूता हुआ एक झरना बहता था जो एक पुराने वट-वृक्ष की घनी छाया मे से गुजरता था। गाँव की औरते वहाँ अपने कलश भरने आती थीं और मार्ग के पथिक वहाँ कुछ देर विश्राम करने ठहर जाते थे।

वह वहाँ झरने के बुदबुदो के समान ही दिन-भर काम करती और अपने सपने लेती रहती थी।

एक दिन शाम को एक अजनबी पर्वत के मेघो से ढके शिखर के पीछे से आया। उसके केश-गुच्छ साँप की कुण्डली के समान गुँथे हुए थे।

हमने आश्चर्य से पूछा, 'तुम कौन हो ?'

वह बिना कुछ कहे उस झरने के पास बैठ अनिमेष नेत्रो से उस झोपड़ी को देखने लगा, जहाँ वह रहती थी। हमारे दिल डर से काँप उठे। रात होने पर हम चुपचाप लौट गए।

अगले दिन सुबह जब औरते झरने पर देवदार वृक्षों के पास पानी भरने गई तो उन्होने देखा, कुटी का द्वार खुला था, किन्तु उसकी आवाज़ नहीं आ रही थी, उसका मुस्काता चेहरा भी वहाँ नही था। फर्श पर ख़ाली सुराही पडी थी और उसका दीपक जलकर बुझ गया था। किसी को पता नही था, वह सुबह होने से पहले ही कहाँ चली गई थी। अजनबी भी चला गया था।

वैसाख मास मे सूर्य की गरमी से बरफ़ पिघलने लगी

थी और हम झरने के पास बैठे शोक मना रहे थे ।

हम मन-ही-मन आश्चर्य कर रहे थे कि 'क्या उस प्रदेश मे भी, जहाँ वह गई है, कोई ऐसा झरना होगा जहाँ वह इन शुष्क, उष्ण दिनो मे अपना घडा भर सकेगी ?' निराशा-भरे शब्दो में हम एक-दूसरे से पूछ रहे थे, 'क्या इस पर्वत-शिखा की ओट मे भी कोई गाँव हो सकता है ?'

जेठ की रात थी, दक्षिण दिशा का पवन वेग से बह रहा था, मै उसकी निर्जन कुटी मे—जहाँ जलकर बुझा हुआ दीपक अब भी वैसा पडा था—अकेला बैठा था। इसी समय मेरी आँखो के सामने अचानक ही, पर्वत-शिखरो का परदा हट गया और मै कह उठा, 'आह, यह तो वही लडकी है जो आ रही है । कहो, कुशल तो है बेटी ? किन्तु अब किस कुटी का आश्रय लोगी, और अब हमारा वह झरना भी तो नही है ।'

वह बोली, 'यहाँ भी वही मुक्त आकाश है, केवल इसकी परिधि के पर्वतो की बाढ नही है, यहाँ भी वही जल-धारा है जो नदी में बदल गई है और यहाँ भी वही घाटी है जो खेतो के रूप मे फैल गई है ।'

मैने आह भरते हुए कहा, 'सब-कुछ है यहाँ, केवल हम नही है ।'

उसने उदासी से हँसते हुए उत्तर दिया, 'तुम मेरे हृदय मे हो ।'

मै उठ खडा हुआ, मैने सुना, वह झरना अब भी कल-कल करता बह रहा था और देवदार के पत्तो से छनकर मर्मर ध्वनि आ रही थी ।

प्रस्तर-मूर्ति

हे निर्वाक् पाषाण सुन्दरी, तू कितने सहस्र वर्षो से दिवारात्रि इसी भाँति चिर-एकाकिनी, अनासक्ता, अनश्वरा और स्वकीय सौन्दर्य-प्रसाधनरत रमणी की भाँति अविचल स्थिर भाव से इस शिलाखण्ड पर प्रतिष्ठित है !

ससार का कोलाहल तुम पर आघात करने मे निष्फल रहता है। जगत् के जन्म-मृत्यु, दुःख-सुख, अस्त-उदय से तू अस्पृश्य और काल की गति से उदासीन रहती है।

तेरे चरणो मे झुका महाकाल मुग्ध नेत्रों से रात-दिन गरज-गरजकर कह रहा है :

अपना मौन भंग करो प्रियतमे ! अचलप्रतिष्ठ मौन वधू, अपने अधर खोलो और कुछ बोलो !

थी और हम भरने के पास बैठे शोक मना रहे थे।

हम मन-ही-मन आश्चर्य कर रहे थे कि 'क्या उस प्रदेश मे भी, जहाँ वह गई है, कोई ऐसा भरना होगा जहाँ वह इन शुष्क, उष्ण दिनो मे अपना घडा भर सकेगी ?' निराशा-भरे शब्दो मे हम एक-दूसरे से पूछ रहे थे, 'क्या इस पर्वत-शिखा की ओट में भी कोई गाँव हो सकता है ?'

जेठ की रात थी, दक्षिण दिशा का पवन वेग से बह रहा था, मै उसकी निर्जन कुटी मे—जहाँ जलकर बुझा हुआ दीपक अब भी वैसा पडा था—अकेला बैठा था। इसी समय मेरी आँखो के सामने अचानक ही, पर्वत-शिखरो का परदा हट गया और मै कह उठा, 'आह, यह तो वही लडकी है जो आ रही है। कहो, कुशल तो है बेटी ? किन्तु अब किस कुटी का आश्रय लोगी, और अब हमारा वह भरना भी तो नही है।'

वह बोली, 'यहाँ भी वही मुक्त आकाश है, केवल इसकी परिधि के पर्वतो की बाढ नही है, यहाँ भी वही जल-धारा है जो नदी में बदल गई है और यहाँ भी वही घाटी है जो खेतो के रूप मे फैल गई है।'

मैने आह भरते हुए कहा, 'सब-कुछ है यहाँ, केवल हम नही है।'

उसने उदासी से हँसते हुए उत्तर दिया, 'तुम मेरे हृदय मे हो।'

मै उठ खडा हुआ, मैने सुना, वह भरना अब भी कल-कल करता बह रहा था और देवदार के पत्तो से छनकर मर्मर ध्वनि आ रही थी।

प्रस्तर-मूर्ति

हे निर्वाक् पाषाण सुन्दरी, तू कितने सहस्र वर्षों से दिवारात्रि इसी भाँति चिर-एकाकिनी, अनासक्ता, अनश्वरा और स्वकीय सौन्दर्य-प्रसाधनरत रमणी की भाँति अविचल स्थिर भाव से इस शिलाखण्ड पर प्रतिष्ठित है !

ससार का कोलाहल तुम पर आघात करने मे निष्फल रहता है। जगत् के जन्म-मृत्यु, दुःख-सुख, अस्त-उदय से तू अस्पृश्य और काल की गति से उदासीन रहती है।

तेरे चरणों में झुका महाकाल मुग्ध नेत्रो से रात-दिन गरज-गरजकर कह रहा है :

अपना मौन भंग करो प्रियतमे ! अचलप्रतिष्ठ मौन वधू, अपने अधर खोलो और कुछ बोलो !

थी और हम झरने के पास बैठे शोक मना रहे थे ।

हम मन-ही-मन आश्चर्य कर रहे थे कि 'क्या उस प्रदेश मे भी, जहाँ वह गई है, कोई ऐसा झरना होगा जहाँ वह इन शुष्क, उष्ण दिनो मे अपना घडा भर सकेगी ?' निराशा-भरे शब्दो मे हम एक-दूसरे से पूछ रहे थे, 'क्या इस पर्वत-शिखा की ओट मे भी कोई गाँव हो सकता है ?'

जेठ की रात थी, दक्षिण दिशा का पवन वेग से बह रहा था, मै उसकी निर्जन कुटी में—जहाँ जलकर बुझा हुआ दीपक अब भी वैसा पडा था—अकेला बैठा था। इसी समय मेरी आँखो के सामने अचानक ही, पर्वत-शिखरो का परदा हट गया और मै कह उठा, 'आह, यह तो वही लडकी है जो आ रही है। कहो, कुशल तो है बेटी ? किन्तु अब किस कुटी का आश्रय लोगी, और अब हमारा वह झरना भी तो नही है।'

वह बोली, 'यहाँ भी वही मुक्त आकाश है, केवल इसकी परिधि के पर्वतो की बाढ नही है, यहाँ भी वही जल-धारा है जो नदी में बदल गई है और यहाँ भी वही घाटी है जो खेतो के रूप मे फैल गई है।'

मैंने आह भरते हुए कहा, 'सब-कुछ है यहाँ, केवल हम नही है।'

उसने उदासी से हँसते हुए उत्तर दिया, 'तुम मेरे हृदय में हो।'

मै उठ खडा हुआ, मैंने सुना, वह झरना अब भी कल-कल करता बह रहा था और देवदार के पत्तो से छनकर मर्मर ध्वनि आ रही थी।

प्रस्तर-मूर्ति

हे निर्वाक् पाषाण सुन्दरी, तू कितने सहस्र वर्षों से दिवारात्रि इसी भाँति चिर-एकाकिनी, अनासक्ता, अनश्वरा और स्वकीय सौन्दर्य-प्रसाधनरत रमणी की भाँति अविचल स्थिर भाव से इस शिलाखण्ड पर प्रतिष्ठित है !

संसार का कोलाहल तुम पर आघात करने मे निष्फल रहता है। जगत् के जन्म-मृत्यु, दु:ख-सुख, अस्त-उदय से तू अस्पृश्य और काल की गति से उदासीन रहती है।

तेरे चरणों मे झुका महाकाल मुग्ध नेत्रो से रात-दिन गरज-गरजकर कह रहा है :

अपना मौन भंग करो प्रियतमे ! अचलप्रतिष्ठ मौन वधू, अपने अधर खोलो और कुछ बोलो !

थी और हम झरने के पास बैठे शोक मना रहे थे ।

हम मन-ही-मन आश्चर्य कर रहे थे कि 'क्या उस प्रदेश मे भी, जहाँ वह गई है, कोई ऐसा झरना होगा जहाँ वह इन शुष्क, उष्ण दिनो मे अपना घडा भर सकेगी ?' निराशा-भरे शब्दो मे हम एक-दूसरे से पूछ रहे थे, 'क्या इस पर्वत-शिखा की ओट मे भी कोई गाँव हो सकता है ?'

जेठ की रात थी, दक्षिण दिशा का पवन वेग से बह रहा था, मै उसकी निर्जन कुटी मे—जहाँ जलकर बुझा हुआ दीपक अब भी वैसा पडा था—अकेला बैठा था। इसी समय मेरी आँखो के सामने अचानक ही, पर्वत-शिखरो का परदा हट गया और मै कह उठा, 'आह, यह तो वही लडकी है जो आ रही है। कहो, कुशल तो है बेटी ? किन्तु अब किस कुटी का आश्रय लोगी, और अब हमारा वह झरना भी तो नही है।'

वह बोली, 'यहाँ भी वही मुक्त आकाश है, केवल इसकी परिधि के पर्वतो की बाढ नही है, यहाँ भी वही जल-धारा है जो नदी में बदल गई है और यहाँ भी वही घाटी है जो खेतो के रूप में फैल गई है।'

मैने आह भरते हुए कहा, 'सब-कुछ है यहाँ, केवल हम नही है।'

उसने उदासी से हँसते हुए उत्तर दिया, 'तुम मेरे हृदय मे हो।'

मै उठ खडा हुआ, मैने सुना, वह झरना अब भी कल-कल करता बह रहा था और देवदार के पत्तो से छनकर मर्मर ध्वनि आ रही थी।

दीदी

पश्चिम प्रदेश का एक मजदूर और उसकी पत्नी मिट्टी की ईंटें बनाने के लिए जमीन में गर्त्त खोद रहे थे।

उनकी कन्या नदी-तट के घाट पर आती-जाती और दिन-भर अपने बरतन, थाली, कटोरा माँजती। उसके पीतल के कंकण पीतल की थाली से टकराते और ठन-ठन बज उठते। इसी तरह वह सारा दिन व्यस्त रहती।

उसका नाटा-नगा छोटा भाई भी उसके पीछे जाता और तट के पास की टेकली पर बडे स्थिर धैर्य से बैठकर वह अपनी बहन के आदेश की प्रतीक्षा करता रहता।

थोड़ी देर बाद भरी गागर को सिर पर टेक, वामकक्ष मे थाली और दाये हाथ से भाई को उठा, वह कर्म-भार से दबी नन्ही-सी दीदी घर की ओर चल पडी।

एक दिन......

उसका नगा, भूखा भाई जमीन पर लेटा था और घाट पर बैठी बहन अपनी गागर मिट्टी से माँज रही थी।

पास ही नदी-तीर पर एक मुलायम-मुलायम बालो वाला मेमना घास चर रहा था। थोड़ी देर मे वह धीमे-धीमे बच्चे के पास आ गया और बच्चे की ओर देख-देख मिमियाने लगा। छोटा भाई उसे देखकर चौंक उठा और चिल्ला पडा।

उसकी बहन गागर माँजना छोड़कर दौड़ी आई।

आकर उसने एक कक्ष मे भाई को उठाया, दूसरे में

दीदी

पश्चिम प्रदेश का एक मजदूर और उसकी पत्नी मिट्टी की ईंटें बनाने के लिए जमीन में गर्त्त खोद रहे थे।

उनकी कन्या नदी-तट के घाट पर आती-जाती और दिन-भर अपने बरतन, थाली, कटोरा माँजती। उसके पीतल के कंकण पीतल की थाली से टकराते और ठन-ठन बज उठते। इसी तरह वह सारा दिन व्यस्त रहती।

उसका नाटा-नगा छोटा भाई भी उसके पीछे जाता और तट के पास की टेकली पर बडे स्थिर धैर्य से बैठकर वह अपनी बहन के आदेश की प्रतीक्षा करता रहता।

थोड़ी देर बाद भरी गागर को सिर पर टेक, वामकक्ष मे थाली और दाये हाथ से भाई को उठा, वह कर्म-भार से दबी नन्ही-सी दीदी घर की ओर चल पडी।

एक दिन······

उसका नगा, भूखा भाई जमीन पर लेटा था और घाट पर बैठी बहन अपनी गागर मिट्टी से माँज रही थी।

पास ही नदी-तीर पर एक मुलायम-मुलायम बालों वाला मेमना घास चर रहा था। थोडी देर मे वह धीमे-धीमे बच्चे के पास आ गया और बच्चे की ओर देख-देख मिमियाने लगा। छोटा भाई उसे देखकर चौक उठा और चिल्ला पडा।

उसकी बहन गागर माँजना छोडकर दौड़ी आई।

आकर उसने एक कक्ष मे भाई को उठाया, दूसरे में